पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

AUGUST 2026

अंक - 10

सामाजिक आपातकाल और वर्तमान वातावरण 3

वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था और समाधान 5

498

MARGDARSHAK

प्रकाशन की तिथि - 31-08-2026 पोस्ट की तिथि - 15-09-2026

सिंहावलोकन

09 **नई समाज व्यवस्था**

11 **मुनि जी की विविध विषयों पर लेख**

16 **शक्ति का स्वभाव**
ज्ञानेन्द्र आर्य

19 **जीवन पथ**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

सामाजिक आपातकाल और वर्तमान वातावरण

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

समाज में व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं एक को कहते हैं शरीफ और दूसरे को चालाक। शरीफ और चालाक में भी कई तरह के अंतर होते हैं लेकिन अर्थ एक ही होता है । जब शरीफ लोगों का मनोबल कमजोर होकर चालाक लोगों का मनोबल बढ़ता रहे उसे हम अव्यवस्था या अराजकता कहते हैं । जब किसी अव्यवस्था से निपटने के लिए नियुक्त इकाई पूरी तरह असफल हो जाये तथा अल्पकाल के लिए सारी व्यवस्था में मुख्य इकाई को हस्तक्षेप करना पडे तो ऐसी परिस्थिति को आपातकाल कहते हैं। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं। दोनों के अपने अपने स्वतंत्र अस्तित्व भी होते है तथा एक दूसरे के सहभागी भी। समाज सर्वोच्च होता है तथा राष्ट्र सहित अन्य सभी इकाइयॉ उसकी सहायक होती हैं। वैसे तो सम्पूर्ण विश्वकी सामाजिक परिस्थितियॉ आपातकाल के अनुरुप हैं किन्तु हम वर्तमान समय में पूरे विश्वकी चर्चा न करके अपनी चर्चा को भारत तक ही सीमित रख रहे हैं। आपातकाल कई प्रकार के होते हैं जिसमें आर्थिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, वौद्धिक, धार्मिक, आदि मुख्य माने जाते हैं। आपातकाल मुख्य रुप से उस परिस्थिति को कहते हैं जब कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह अन्य लोगों की इच्छा के विरुद्ध उन्हें अपनी नीतियों पर काम करने के लिए बाध्य कर दे। यद्यपि भारत में आर्थिक धार्मिक तथा अन्य परिस्थितियॉ भी खतरनाक मोड ले रही हैं तथा सब पर सोचने की आवश्यकता है किन्तु हम यहॉ समाज पर राज्य के खतरे तक ही अपने को सीमित रख रहे हैं। राज्य की असफलता सिद्ध करने के लिए कुछ लक्षणों पर विचार करना होगा-

(1)जब राज्य व्यवस्था सुरक्षा और न्याय की तुलना में जनकल्याण के कार्यो को प्राथमिकता देना शुरु कर दे लोकहित का स्थान लोकप्रियता ले ले। ग्यारह समस्याएँ-(1) चोरी, डकैती, लूट (2) बलात्कार (3) मिलावट कमतौलना (4) जालसाजी, धोखाधडी (5) हिंसा और आतंक (6) चरित्रपतन (7) भ्रष्टाचार (8) साम्प्रदायिकता (9)जातीय कटुता (10) आर्थिक असमानता (11) श्रमशोषण। स्वतंत्रता के बाद ये सभी समस्याए लगातार बढ रही हैं तथा भविष्य में भी किसी समस्या के नियंत्रण की स्पष्ट योजना नहीं दिख रही है। नरेन्द्र मोदी के आने के बाद कुछ समाधान की जो धुधली सी रुपरेखा दिख रही है वह भी व्यक्तिगत और तानाशाही तरीके से आ रही है,व्यवस्थागत और लोकतांत्रिक तरीके से नहीं।

(2)समाज व्यवस्था पूरी तरह छिन्न भिन्न हो गई है। समाज का स्वरुप जानबूझकर इतना कमजोर कर दिया गया है कि या तो राज्य ही समाज का प्रतिनिनिधत्व करता दिख रहा है अथवा छोटे छोटे समाज तोडक संगठन। राज्य योजनापूर्वक समाज को धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रियता, उम्र,लिंग, गरीब अमीर, किसान मजदूर,शहरी ग्रामीण आदि वर्गो में बांटकर वर्ग विद्वेष,वर्ग संघर्ष बढाने का प्रयास कर रहा है। राज्य समाज का प्रबंधक न होकर कष्टोडियन बन बैठा है।

(3)समाज का संस्थागत ढांचा कमजोर करके संगठनात्मक ढांचा मजबूत किया जा रहा है। सब जानते है कि संस्थाए समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। तो संगठन आवश्यकताओं को पैदा करते है। फिर भी इतना जानते हुए भी संगठनों को बढावा दिया जा रहा है।

(4)चिंतन गौण हो गया है और प्रचार महत्वपूर्ण हो गया है। यहॉ तक कि संसद में भी चिंतन का वातावरण कभी नहीं बनता। भारत संसदीय लोकतंत्र की आंख मूंदकर नकल कर रहा है जबकि उसे भारतीय परिवेष में नई व्यवस्था के प्रारुप पर चिंतन करना चाहिए था।

(5)समाज में अहिंसा कायरता का पर्याय बन गई है। दो बातें भारतीय संस्कृतिका आधार मानी जाने लगी हैं- (1) मजबूत से दबा जाये और कमजोर को दबाया जाये। (2) न्युनतम सक्रियता और अधिकार लाभ के मार्ग खोजे जाये। भारत दोनों दिशाओं में लगातार बढ रहा है।

(6)समाज लगातार व्यक्ति केन्द्रित होता जा रहा है। विचार केन्द्रित नहीं,नीति केन्द्रित नहीं, सिद्धांत केन्द्रित भी नहीं। बिना विचारे व्यक्ति के पीछे चलने की प्रवृत्ति निरंतर बढाई जा रही है।

इस तरह से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान भारत की सामाजिक परिस्थितियॉ सामाजिक आपातकाल के पूरी तरह उपयुक्त है।

स्वतंत्रता के बाद यदि हम इस गिरावट के कारणों की समीक्षा करें तो इसमें दो लोगों का विशेष योगदान दिखता है- (1) पंडित नेहरु (2) भीमराव अम्बेडकर। पंडित नेहरु ने समाज को गुलाम बनाकर रखने के लिए समाजवाद को थोपने का प्रयास किया तो डॉ अम्बेडकर ने अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए सामाजिक एकता को छिन्न भिन्न करने में अपनी पूरी शक्ति लगाई। यदि नेहरु और अम्बेडकर की आपस में तुलना करें तो पंडित नेहरु की नीतियॉ गलत थीं किन्तु नीयत पर अभी संदेह नहीं किया जा सकता तो भीमराव अम्बेडकर की नीतियॉ भी गलत थी और नीयत भी। यदि हम वर्तमान समय में ठीक ठीक आकलन करे तो पंडित नेहरु का यथार्थ समाज के समक्ष स्पष्ट होने लगा है किन्तु भीमराव अम्बेडकर का कलंकित यथार्थ अभी सामने आना बाकी है भारत की वर्तमान परिस्थितियॉ राजनैतिक सत्ता को मजबूर कर रही है कि वे

अम्बेडकर जी को अल्पकाल के लिए महापुरुष ही बने रहने दें। मेरे विचार में गांधी और आर्यसमाज भारत की वर्तमान सामाजिक समस्याओं का समाधान चाहते थे तो भीमराव अम्बेडकर उन सामाजिक समस्याओं को उभार कर उससे अपना राजनैतिक हित पूरा करना चाहते थे। भारतीय सामाजिक व्यवस्था वर्तमान समय में तीन तरफ से आक्रमण झेल रही है। (1) साम्यवाद (2) दारुल इस्लाम (3) पाश्चात्य संस्कृति। भारत में साम्यवाद का पतन शुरु होते ही साम्यवाद और दारुल इस्लाम ने हाथ मिला लिया और वह सबसे बडा खतरा बन गया। यदि राजनैतिक तौर पर तीन श्रेणियां मान ले (1) शत्रु (2) विरोधी (3) प्रतिस्पर्धी। तो साम्यवाद शत्रु, दारुल इस्लाम विरोधी और पाश्चात्य संस्कृति को प्रतिस्पर्धी में रखा जा सकता है। शत्रु हमारे विरोधी की सहायता में आ गया है। ऐसी परिस्थितियों में भारत को यह रणनीति बनानी होगी कि हम आपातकाल समझकर अपने प्रतिस्पर्धी के साथ समझौता करके विरोधी से मुकाबला करें। मुझे लगता है कि भारत सरकार पूरी बुद्धिमानी के साथ इस दिशा में आगे बढ रही है। किसी भी मामले में या तो तटस्थ भूमिका अपनाई जा रही है अथवा अमेरिका की तरफ झुकी हुई। हमारे कुछ मित्र यदा कदा ना समझी में अमेरिका की अनावश्क और ऐसी आलोचना कर देते है जो किसी न किसी रुप में साम्यवाद दारुल इस्लाम की सहायक हो जाती है। हमें रणनीति के अन्तर्गत ऐसी आलोचनाओं से यथार्थ होते हुए भी बचना चाहिये। इसी तरह यदि हम हिन्दुत्व को भारतीय समाज व्यवस्था के साथ जोडकर देखें तो संघ के कार्य हिन्दुत्व की सुरक्षा में तो सहायक थे किन्तु विस्तार में बाधक। राष्ट्रवाद भारतीय समाज व्यवस्था के लिए बहुत घातक है किन्तु वर्तमान समय में साम्यवाद और दारुल इस्लाम के खतरे को देखते हुए हमें संघ और उसके राष्ट्रवाद को शक्ति देने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। सामाजिक आपातकाल है। इसका समाधान खोजना होगा। हमारी भारत की राजनैतिक व्यवस्था किस दिशा में करवट लेगी यह अभी स्पष्ट नहीं है। सकारात्मक चार दिशाये होती है- (1) प्रशंसा(2) समर्थन (3) सहयोग (4) सहभागिता। वर्तमान शासन व्यवस्था समस्याओं का समाधान कर पायेगी ऐसे लक्षण दिख रहे है किन्तु यह स्पष्ट नहीं दिखता कि समाज का अस्तित्व सदा सदा के लिए राज्य में विलीन हो जायेगा अथवा राज्य शासक की जगह प्रबंधक की ओर बढेगा। क्योंकि वर्तमान समय में नरेंद्र मोदी को संविधान संशोधन के असीम अधिकार प्राप्त नहीं हैं इसलिए हमे इस संबंध में और प्रतीक्षा करनी होगी किन्तु संघ परिवार की लाइन बिलकुल ठीक दिशा में चलने के कारण अचछी संभावना दिखती है ऐसी परिस्थिति में हमें सतर्क दृष्टिकोण अपनाना होगा। जब तक यह साफ नही दिखे कि भारत विचार मंथन की दिशा में बढ रहा है, तानाशाही और लोकतंत्र की जगह लोकस्वराज्य की ओर जा सकता है, तब तक हमे राज्य से सहभागिता नहीं करनी चाहिये। प्रशंसा,समर्थन और कभी कभी सहयोग भी किया जा सकता है किन्तु सहभागिता नहीं। यदि साम्यवाद और दारुल इस्लाम का गठजोड कमजोर नहीं होता है तो हमें राज्य का सहयोग करना चाहिये, भले ही समाज की जगह राष्ट्र ही क्यों न मजबूत होता हो। किन्तु यदि खतरा कमजोर होता है तो हमें राष्ट्रवाद और तानाशाही प्रवृतियों से दूरी बनाकर एक सत्ता निरपेक्ष तथा सामाजिक शक्ति को मजबूत करना चाहिये। हमें पश्चिम की सांस्कृतिक आंधी का विरोध न करके प्रतिस्पर्धा तक स्वयं को सीमित करना चाहिये। हमें सतर्क रहना चाहिए कि हम भारतीय राज्य व्यवस्था के सहभागी नहीं है और हम उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे है जब समाज मालिक होगा और राज्य मैनेजर या प्रबंधक।

मैने सन 77 से ही यह आभास कर लिया था कि सामाजिक आपातकाल की परिस्थितियां हैं लेकिन ऐसी कोई टीम नहीं बन पा रही थी। सन 99 आते आते हम लोगों ने बैठकर भारत की वैकल्पिक संवैधानिक व्यवस्था का एक प्रारुप भी बना लिया जो आज भी मौजूद है। हम लोगों ने सन् 2000 से 2003 तक रामानुजगंज शहर में सर्वोदय के मार्ग दर्शन में नई राजनैतिक व्यवस्था का सफल प्रयोग भी किया। संविधान के प्रारुप और प्रयोग की सफलता के बाद हम सब लोगों ने 26 से 29 मार्च 2003 में सेवाग्राम में बैठकर ठाकुरदास जी बंग जी के नेतृत्व में सामाजिक आपातकाल की घोषणा की और समाधान की विस्तृत योजना बनाई। यह योजना ज्ञानतत्व क्रमांक 64 में विस्तारपूर्वक प्रकाशित है। उस योजना की सफलता इसलिए नहीं हो पायी कि सर्वोदय के सरकारी पदाधिकारियों ने इसका विरोध कर दिया। बाद में अन्ना जी के नेतृत्व में इस योजना पर काम शुरु हुआ और अरविंद केजरीवाल के धोखा देने के बाद वह काम रुक गया। अब 2017 के अक्टूबर माह से इस सामाजिक आपातकाल के समाधान की दिशा में निरंतर विस्तार हो रहा है। नरेंद्र मोदी तो प्रारम्भ से ही ठीक दिशा में चल रहे थे लेकिन संघ परिवार प्रवीण तोगड़िया के दबाव के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ था। 2017 के बाद संघ परिवार ने पूरी तरह गांधी मार्ग पर चलना शुरू कर दिया । इस तरह एक अच्छी उम्मीद की किरण बनती है अभी कुछ दिनों पहले ही भगवत जी ने अमेरिका में बयान देकर अपनी प्रगति और साफ कर दी है । स्पष्ट है कि सामाजिक आपातकाल के समाधान के लिएसमाज सर्वोच्च की भूख आम लोगों में पैदा करनी होगी। परिस्थितिवश कुछ शक्तियों से समझौते भी करने पड सकते है किन्तु लक्ष्य स्पष्ट रखना होगा। जब तक हम राज्य को सारी दुनिया से और विशेषकर प्रारंभ में भारत से संरक्षक की जगह पर प्रबंधक नहीं बना लेते, तब तक हम शांति से नहीं बैठेंगे। इसके लिए हमें जो नीतियां बनानी होगी वो बैठकर बनायेंगे। क्योंकि लक्ष्य हमारा स्पष्ट है और उसे पूरा करके ही रहेंगे।

वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था और समाधान

चाहे व्यवस्था पारिवारिक हो या स्थानीय अथवा राष्ट्रीय, व्यवस्था को ठीक ढंग से चलाते रहने के लिये दो आवश्यकताएं होती है। 1. मुखिया अधिकार सम्पन्न हो । 2. मुखिया समझदार हो। यदि मुखिया अधिकार सम्पन्न न हो तो अव्यवस्था निश्चित है। यदि मुखिया समझदार न होकर शरीफ हो तो परिवार लुट जायेगा और बर्बाद हो जायेगा तथा यदि मुखिया धूर्त हुआ तो वह स्वयं ही पूरे परिवार को लूट लेगा । जब भारत स्वतंत्र हुआ तब हमारे देश में अधिकांश नेता शरीफ थे । उनकी नीयत ठीक थी, समझदारी का अभाव था । उन्हें राजनीति शास्त्र का भी ज्ञान था और धर्मशास्त्रका भी किन्तु समाज शास्त्र का ज्ञान नही के बराबर था। यही कारण था कि उन्होंने भारत की राजनैतिक व्यवस्था के लिये भारतीय स्वतंत्र समाज व्यवस्था का मार्ग न पकडकर विदेशी समाज व्यवस्था की नकल की । नकल को भी वे स्वतंत्रता पूर्वक असल नही बना सके, बल्कि उन्होंने पश्चिमके लोकतंत्र, इस्लाम के धर्मतंत्र और साम्यवाद की तानाशाही का घालमेल करके समाजवाद के नाम पर व्यवस्था चलाने की कोशिश की। गांधी जी पूरी तरह ग्राम स्वराज्य के पक्षधर थे । साम्यवादी तथा संघ परिवार के लोग सिद्धान्ततः केन्द्रीयकरण के पक्षधर थे । स्वाभाविक ही है कि पटेल जी उधर ही झुके थे। अम्बेडकर जी ग्राम स्वराज्य के विरूद्ध थे। नेहरू जी अन्दर अन्दर तो ग्राम स्वराज्य के विरूद्ध थे किन्तु उपर से कुछ कहना नही चाहते थे। राजेन्द्र बाबू वगैरह भारतीय संस्कृतिके पक्षधर होते हुये भी इतने राजनीति के खिलाड़ी नही थे कि उनकी शराफत अन्य चालाक लोगों को रोक पावें । लोहिया जी और जयप्रकाश जी ग्राम स्वराज्य और समाजवाद का तालमेल बिठाने की कसरत करते रहे। ये लोग प्रारंभ सेही यह स्पष्ट नही कर सके कि समाजवाद ग्राम स्वराज्य के बाद ही आ सकता है, पहले नहीं । ये लोग समाजवाद और ग्राम स्वराज्य को एक साथ लाना चाहते थे जो बिल्कुल विपरीत प्रयत्न था । जयप्रकाश जी को बहुत जल्दी यह बात समझ में आ गई किन्तु लोहिया जी जीवन भर दोनो के धालमेल की ही कोशिश करते रहे । गांधी के बाद और कोई नही था जो राजनीति के दाव पेच समझ पाता । गांधी जी के वारिस विनोबा भावे तो इतने शरीफ निकले कि सब कुछ लुट जाने में भी वे सुख और शांति का अनुभव ही करते रहे । त्याग का कीर्तिमान बनाते बनाते हमारी सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था लुट गई और विनोबा जी कीर्तिमान बनाते रहे।

नेहरू जी और अम्बेडकर जी भी थोड़ी सी सत्ता के लिये तो चालाकी करते थे किन्तु अन्य मामलो में इनकी नीयत खराब नही थी । नेहरू जी भारतीय समाज शास्त्र को पश्चिम के रंगीन चश्में से देखते थे तो अम्बेडकर जी जीवन भर सवर्णो की प्रतिक्रिया के उपर कभी उठे ही नही। समाजशास्त्र का यह आवश्यक नियम होता है कि आर्थिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक समस्याओ की ठीक ठीक तथा अलग अलग पहचान हो तो उनका समाधान भी उसी वर्ग के अनुसार किया जावे अर्थात् सामाजिक समस्याओ का सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का आर्थिक तथा प्रशासनिक समस्याओ का प्रशासनि कसमाधान हो। ना समझी मे इन दोनो ने इस समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को उलट कर रख दिया। अम्बेडकर तो प्रतिक्रिया मे इतने उतावले थे कि वे सभी सामाजिक समस्याओ का प्रशासनिक समाधान तत्काल ही करने मे जुट गये। नेहरू जी भी दबे छिपे उनके साथ हो लिये। दूसरी ओर नेहरू जी भी सभी आर्थिक समस्याओ का प्रशासनिक समाधान करने के लिये उतावले हो गये । समाजवाद के नारे ने इनके चिन्तन की सारी सीमाएँ तोडकर उसे एकतरफा बना दिया। इन लोगो ने एक दो अच्छे कदम उठाने के बाद कुछ ऐसा गुड-गोबर किया कि देश और समाज आज तक उबर नही पाया। जिस तरह अम्बेडकर जी के समाज तोड़क कदमो का नेहरू जी ने बिना विचार किये साथ दिया उसी तरह अम्बेडकर जी ने भी नेहरू जी के समाजवादी आर्थिक कदमो का भरपूर साथ दिया। समाजवाद की जल्दबाजी मे एक किरायेदार कानून पास कर दिया गया जिसके अनुसार मकान मालिक का मकान झूठ बोलकर कब्जा करने की स्वतंत्रता किरायेदारों को दे दी गई। ऐसा कानून बिना सोचे समझे जल्दबाजी मे लागू कर दिया गया। आर्थिक समस्या का प्रशासनिक हस्तक्षेप से समाधान करने की कोशिश हुई। समस्या का समाधान तो नहीं हुआ उल्टे इसके परिणाम स्वरूप सत्य और ईमान का गला घुट गया। मकान मालिक और किरायेदार के बीच चालाकी और धूर्तता के नये नये कीर्तिमान बनने लगे। न्यायपालिका पर भी भारी बोझ बढा। अनेक मामलो में तो हिंसा या बल प्रयोग का भी सहारा लिया गया और प्रशासनिक मशीनरी बोझिल हुई। इन सब परिणामो की पूर्व कल्पना की उस समय फुर्सत किसे थी ? समाजवाद की लोकप्रियता उचित अनुचित पर विचार करने का समय ही नही दे रही थी। समाजवाद के नाम पर उस समय जो भी कानून बने उसमें सबसे अधिक चरित्र पतन में यह कानून ही सहायक हुआ। किसी का भी मकान किराये पर लेकर अपना बना लेने की बेइमानी को सामाजिक प्रशासनिक मान्यता मिल जावे तो समाज में चरित्र खोजने से भी मिलना संभव ही नही है। जो स्वाभाविक था वही हुआ ।आर्थिक विशमता तो घटी नही, चरित्र घटता चला गया। इस कानून का भूत आज तक समाज का पिण्ड नही छोड सका है। दुष्परिणामों से बचने के लिये कई किनारे के मार्ग खोजे गये और खोजे जा रहे है

किन्तु किसी की हिम्मत नही कि समस्या की जड़ पर विचार करना शुरू करे। ऐसी ही एक दूसरी आर्थिक समस्या की चर्चा करे। अर्थशास्त्रका एक जटिल सिद्धान्त है कि आपको किन्हीं अन्य कार्यो के लिये धन चाहिये तो उक्त कर लगाने के पूर्व आप अपनी इच्छा को स्पष्ट कर ले। यदि आप टेलीफोन का उपयोग घटाते हुये धन वसूलना चाहते है तो टेलीफोन काल को मंहगा करे और उपकरण को टैक्स फ्री रखे। दूसरी ओर यदि आप टेलीफोन का उपयोग बढाते हुये धन वसूलना चाहते है तो कॉल को सस्ता रखते हुए उपकरण पर टैक्स बढावें। हमारी सरकार को सडकों के रखरखाव के लिये धन चाहिये था। दो मार्ग थे या तो गाड़ियो पर टैक्स लगावें या डीजल पेट्रोल पर। प्रारभ में तो दोनो पर कर लगे किन्तु बाद मे उपकरण पर टैक्स बढाते गये और इंधन पर राहत देने लगे। आवागमन बढता चला गया। यदि इसका ठीक उल्टा होता अर्थात गाडियों को टैक्स फ्री करके सारा टैक्स इधन पर लगाया जाता तो आवागमन तो इतना नहीं बढता किन्तु सुविधा बहुत बढ जाती। घर घर में गाडी तो होती किन्तु चलती बहुत सोच समझकर। हमारे अर्थशास्त्री भी आज तक इस बात को समझ नही सके कि उपकरण और इधन का क्या तालमेल होता है। इस बात को और ठीक से समझने के लिये हम भूमि की मालगुजारी और कृषि उत्पादन पर कर की चर्चा करे। बहुत प्राचीन काल में भूमि पर टैक्स था किन्तु अनाज तिलहन जैसे उत्पादन कर मुक्त थे। अंग्रेजो की भूख बढी तो उन्होने जमीन और उत्पादन दोनो पर कर लगा दिया। स्वतंत्रता के बाद शासन को उत्पादन में बृद्धि को प्रोत्साहित करना था जिससे कम भूमि में अधिक उत्पादन लेने को प्रोत्साहन मिले। नासमझ सरकार ने अनाज तिलहन पेड पौधे गन्ना आदि सब प्रकार के उत्पादनो पर तो भारी कर लगा दिये और जमीन का लगान या तो माफ कर दिया गया या कम कर दिया। जमीन की लगानमाफी एक लोकप्रिय कदम था क्योकि यह प्रत्यक्ष कर था। अनाज तिलहन गन्ना आदि पर कर अप्रत्यक्ष होने से शासनकी कोई बदनामी नही होनी थी । इन अप्रत्यक्ष करों का शासन को ऐसा चस्का लगा कि शासन कई प्रकार की तिकड़म करके अधिक से अधिक पैसा ऐसी वस्तुओं से वसूलने लगा और बदले में इन उत्पादकों को भी सस्ती खाद सस्ती बिजली जैसे लोकप्रिय प्रलोभन देने लगा । मै समझ नही सका कि कपास या चना अरहर मूंग जैसे दलहन फसलों से भारी कर वसूल कर लगान या बिजली पर राहत देने का गणित क्या है ? किसान सरसों या सरसों तेल पर टैक्स दे और मिट्टी तेल पर सब्सीडी ले ऐसी कोशिश क्यों की जावें । पेड़ों पर भारी कर लगे और ट्रेक्टर पर छूट हो यह बात भी समझ से परे है। मैं तो आज तक समझ नही सका कि अनाज, तिलहन, बीड़ी पत्ता, लकड़ी जैसे कृषि उत्पादों पर भारी कर वसूल कर कृषिभूमि पर लगान बढाने से क्यो बचते रहे। परिणाम दूरगामी हुआ। हम आज भी दलहन तिलहन का तो आयात ही कर रहें है। शक्कर का भी उत्पादन घट ही रहा है। अनाज का उत्पादन भी कोई ऐसी स्थिति में नही है कि हम एक दो वर्षो का संकट झेल सके । इसके विपरीत भूमि के दाम आसमान छूने लगे। खेती अलाभकर होती गई और खेती की जमीन लाभकर होती गई। इस विपरीत परिणाम का दोशी कौन? क्यों नही राज्य ने कृषिभूमि उत्पादन पर से सारा टैक्स हटाकर भूमि पर डाल दिया । यदि ऐसा होता तो खेती लाभदायक होती और पड़त भूमि हानिकर होती । यदि भूमि पर ही कर होता तो व्यापारियों के कई प्रकार के कर चोरी के भी अवसर नही होते । सबसे अच्छा तो यही होता और चरित्र की गिरावट रोकने का भी यह अच्छा कदम होता । प्रश्न उठता है कि स्वतंत्रता के समय हमारे मुखिया लोग इतना समझ नही पाये इसलिये ये भूलें हुई या जानबुझकर। किन्तु अब भी क्यों नही सुधार हो रहा । क्योंकी अभी वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था इस दिशा में नियत ठीक होते हुए भी सही निर्णय नहीं कर पा रही है इसलिये अब हमारा सबसे पहला कदम यह होना चाहिये कि हम वर्तमान लोकतंत्र को अस्वीकार करके लोकस्वराज्य की दिशा में आगे बढ़ना शुरू करें । सामाजिक समस्याओं के सामाजिक समाधान, आर्थिक समस्याओं के आर्थिक समाधान तथा शेष बची खुची प्रशासनिकसमस्याओं के लिये ही प्रशासनिक समाधान की बात करें । हम गांवो से ग्राम सभा सशक्तिकरण को आधार बनाकर यदि राजनैतिक हस्तक्षेप को सीमित, संशोधित और परिष्कृत कर दे तो अधिकांश समस्याओं पर अंकुश लग सकता है। आज भी भारत के गांव, चरित्र पतन में शहरों की अपेक्षा दूर है। गॉवों में लोकस्वराज्य आसान हो सकता है। उचित होगा कि हम गांवो से ग्राम सभा सशक्तिकरण शुरू करें और तब शहरों की ओर लगातार बढ़ते जावें।

वर्तमान समाज व्यवस्था पर कुछ प्रमुख विचार

1 संचालक और संचालित के बीच बढ़ती दूरी ही समाज की सबसे प्रमुख समस्या है।

2 यह बात निर्विवाद है कि मानव स्वभाव हिंसा की दिशा मे बदल रहा है । अभी दुनिया भर के समाजशास्त्री पर्यावरणीय ताप वृद्धि की चिन्ता के लिये दोहा मे बैठे थे और लम्बा विचार मंथन किये । पर्यावरणीय ताप वृद्धि का दुष्परिणाम आने मे जितना समय लगेगा उसकी अपेक्षा बहुत कम समय मे ही मानव स्वभाव ताप वृद्धि के दुष्परिणामो का खतरा मंडरा रहा है किन्तु आश्चर्य है कि इस समस्या पर गंभीर विचार मंथन के लिये कोई सम्मेलन नही हो रहा ।

3 समाज की समस्याएं समाज हीं ठीक करता है। उसमे हस्तक्षेप करना किसी सरकार का कार्य नही।

4 समाज के समक्ष समस्याएँ पांच प्रकार की होती हैं-(1) वास्तविक (2) कृत्रिम (3) प्राकृतिक (4) भूमण्डलीय (5)

अस्तित्वहीन। समाज प्राथमिकताओं के क्रम में उपरोक्त क्रम से समाधान चाहता है तो राजनीति ठीक विपरीत क्रम से समाधान करती है।

झूठ के पांव

सामाजिक आपातकाल की परिस्थितियों के आकलन के दस लक्षण माने जाते हैं। इनमें से भी दो का बहुत व्यापक प्रभाव होता है। 1. प्रचार माध्यमो को आधार बनाकर सत्य का झूठ, झूठ को सच बनाने मे सफलता तथा 2. सामाजिक विश्वास प्राप्त व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा समाज सेवा या राजनीति का व्यवसायीकरण। यदि वर्तमान सामाजिक स्थिति का आकलन करें तो दोनो ही दिशाओंमें समाज लगातार कमजोर हो रहा है। पुराने जमाने में एक कहावत थी कि झूठ के पांव नही होते। किन्तु आज तो हम देख रहें हैं कि झूठ प्रसार माध्यमों के सहारे तेजी से दौड रही है। भारत लागातार साम्प्रदायिकता आधार पर दो गुट मे बट रहा है। एक मेंहै वामपंथी ,नकली गांधीवादी, मानवाधिकार वादी, मुसलमान तथा दूसरे में है संघ परिवार, गायत्री परिवार आर्य समाज गांधीवादीआचार्यकुल तथा राष्टवादी भारतीय संस्कृतिके अग्रणी पैरोकार आदि। दोनों दो गुटों मे बटे हुए है किन्तु असत्य की संत्य बनाने और सत्य को असत्य बनाने मे बढ़ चढ़ कर आगे निकलने की जी तोड़ कोशिश मे लगे है। मैंने पिछले बीस वर्षो की कुछ गंभीर घटनाओं का आकलन किया तो पाया कि इन घटनाओं में कई राष्ट्रीय स्तर के ख्याति प्राप्त व्यक्तियों ने सहभागिता की है। कई स्थापित समाज सेवक जिनके जीवन के अन्य अनेक कार्य श्रद्धा भाव पैदा करतें हैं भी गुट बंदी के कारण किसी किसी मामले मे सच को झूठ बनाते बनाते इस सीमा तक नंगे हो जाते हैं कि हम लोगों को शर्म से आखें बन्द कर लेनी पडती है। कुछ वर्ष पूर्व घटा गोधरा रेल अग्नि कांड एक ऐसा ही मामला था। सारा विश्व समझ चुका है कि कुछ साम्प्रदायिकता मुसलमाानों ने रेल डब्बे पर आक्रमण किया जिसकी आग से कार सेवक जल मरें। मुझे खूब याद है कि उस समय कई प्रकार के असत्यों को स्थापित करने की कोशिश हुई। स्टेशन पर से सामान बेच रहे वेंडरों को नास्ता करके पैसा न देने के नाम पर झगडा हुआ, स्टेशन पर एक लड़की को जबरदस्ती खींच कर चढ़ाने पर झगडा हुआ और ऐसी अन्य कई कहानियाँ तैयार की गई और तब अन्त में यह स्थापित हो पाया कि आग से बाहर के लोगों का कोई सम्बन्ध नही था। आग या तो कार सेवकों ने लगाई या उनकी गल्ती से आग लग गई। प्रसिद्ध गांधीवादी और गांधी मार्ग के सम्पादक अरूण बोरा जी ने अपनी पत्रिका मे कुछ सच खोजने की कोशिशकी तो आमतौर पर गांधीवादियों ने उनके लिये जैसे शब्दों का विरोध प्रकट किया वह मैने स्वयं अबोहर पंजाब मे सुना है। मेरे एक निकट के गांधी वादी मित्र ने भी यह बात मुझे कई बार बताई कि आग बाहर से लगना संभव ही नहीं है। वामपंथियों द्धारा किये जाने वाले ऐसे प्रयत्न तो जग जाहिर हैं किन्तु सत्य औरअहिंसा की दिन रात माला जपने वाले भी सत्य की ठीक से खोज किये बिना ही अपने गुट द्धारा फैलाये गये असत्य को फैलाना शुरू कर दें तो कष्ट होना स्वाभाविक है। मैं मानता हूँ कि गांधीवादियों ने जान बुझकर ऐसा नहीकिया किन्तु इन्होंने ऐसा करके सत्य को क्षति तो पहुंचाई ही।

कुछ माह बाद ही दूसरी गंभीर घटना हुई जब कुछ आतंकवादी मुसलमानों ने संसद भवन पर आक्रमण किया। आक्रमण बिल्कुल प्रत्यक्ष होने से घटना को असत्य कहना तो संभव नहीं हो सका किन्तु पुलिस द्धारा पकडे गये लोग निर्दोष हैं या उनके साथ मानवीय व्यवहार जैसे तर्क तो हवा में तैरते ही रहे। न्यायालय से निर्दोष सिद्ध गीलानी का तो ऐसे सम्मान हुआ जैसे कि सम्मानकर्ता पहले से ही जानते हों कि एक निर्दोष व्यक्ति बडी मुश्किल से आतंकवादियों के चंगुल से बच सका हैं। आश्चर्य तो तब हुआ जब एक विश्वप्रसिद्ध स्थापित मानवाधिकार कार्यकर्ता अरून्धती राय ने संसद पर हुए हमलों के षडयंत्र का संदेह भारतीय शासन की ओर मोड दिया। अरून्धती जी के कश्मीर पाक को सौप देने अथवा परमाणु विस्फोट से बौखलाकर भारत की नागरिकता छोडने की घोषणा जैसे विचारों को उनके स्वतंत्र विचार माने जाने चाहियें किन्तु संसद के हमले पर प्रश्न खडे करना उनके विचार न होकर किसी घटना का असत्य विवरण मात्र ही है। ऐसी स्थिति में उनका कथन उनके विचार न होकर उनकी नीयत की ओर इशारा करने लगते हैं। अरून्धती राय कोई सामान्य महिला तो हैं नहीं। दो हजार आठ में बाटला हाउस में दो आतंकवादी मारे गये और एक इन्सपेक्टर मोहनचन्द शर्मा भी शहीद हो गये। चौबीस घंटे के भीतर ही मुसलमानों के हिमायती गुट ने तर्क खोजने शुरू किये। अमर सिंह जी तथा अर्जुन सिंह जी के शब्द तो ऐसे मामलों में कोई महत्व नहीं रखते क्योंकि ये तो किस सीमा तक जा सकते हैं वह सीमा आज तक बनी ही नहीं। पी0एच0यू0 आर की टीम संजरपुर की ओर दौंड पडी। अनेक मुस्लिम सांसदों का प्रतिनिधि मंडल प्रधान मंत्री से मिला। और भी चारों ओर दौड धूप हुई। किन्तु आश्चर्यतो तब हुआ जब जामिया मिलिया के कुलपति मुशीरुल हसन जी का इस्लाम प्रेम भी एकाएक जागृत हो उठा और उन्होंने गिरफ्तार आतंकियों की विद्यालय की ओर से कानूनी सहायता की द्योषणा कर दी। मुशीरुल हसनजी इस घटना से भी अधिक गंभीर घटनाओं से भी कभी विचलित नहीं हुए थें। यह घटना तो पूरी तरह संदेह से परे थी। पर पता नहीं किन तर्को के आधार पर उन्हें समझाया गया। मैं अब भी समझता हूँ कि उन्होंने जान बुझकर ऐसा नहीं किया होगा। किन्तु उनके कथन ने एक गंभीर वातावरण तो पैदा कर ही दिया था। जिसके कारण सरकार कई दिनों तक परेशान भी रही और पेशेवर गुटों को सम्बल भी मिल गया।

कुछ वर्ष पूर्व ही बम्बई आक्रमण में ए टी एस प्रमुख हेमन्त करकरे की हत्या हो गई। एक केन्द्रीय मंत्री अब्दुल रहमान जी अंतुल ने ऐसी स्पष्ट घटना को भी विवादास्पद बनाने की भरपूर कोशिशकी। करकरे जी की हत्या में आतंकवादियों के अतिरिक्त भी कुछ होना संभव है ऐसा उन्होंने संदेह व्यक्त करके अपना अल्पसंख्यक धर्म निभाया किन्तु समाज में एक मुसीबत खडी हो गई। उर्दू प्रेस उनके बयान के आधार पर सामने आने लगे। दिग्विजय जी भी मुखर हुए और अन्त में सरकार को अपना स्पष्टीकरण देना पडा। पिछले दस वर्षों से तो असत्य को सत्य बनाने की कोशिशें और भी अधिक हो रही है। ऐसा लगता है की राहुल गांधी ने तो एक ऐसा कारख़ाना ही खोल दिया है जहां असत्य को बार बार बोलकर सत्य बनाने का प्रयत्न होता है । यद्यपि जल्दी ही वह प्रयत्न असफल भी हो जाता है किन्तु अब तक ऐसे प्रयत्नो में कोई कमी नहीं दिख रही है। यदि इन पर चर्चा की जाए तो एक बहुत बड़ी किताब लिखी जा सकती है लेकिन ये घटनाए आम तौर पर लोगों के दिमाग में हैं इसलिए इन पर विस्तार से चर्चा करना आवश्यक नहीं है फिर भी हमे यह बात अवश्य समझनी पड़ेगी की जिम्मेदार पदों पर बैठे लोग जानबूझकर झूठ को सच के समान तैयार करते हैं और दिन रात उसे दुहराकर सच बनाने की असफल कोशिश करते हैं। यही कारण हैं की अब हम लोग आम लोगों में सच और झूठ पहचानने की छमता विकसित करने का अभियान चला रहें हैं । इस लिये मै यह कहसकता हूँ कि आज समाज व्यवस्था संकट काल से गुजर रही है। समाज में असत्य सत्य के समान मान्यता प्राप्त करता जा रहा है। स्थापित विद्धान गुटों में षामिल हो गये है। वातावरण निराशा पूर्ण है। आवश्यकता ऐसी है कि कोई स्वामी दयानन्द, कोई गाँधी तैयार किया जाय जिसके अनुयायियों के सत्य पर समाज को विश्वास हो। यदि हम ऐसा कर सके तो समाज को वर्तमान संकट से निकाल सकते है।

वर्तमान परिस्थितियों में सामाजिक, धार्मिक समाधान

धर्म, समाज तथा राज्य अर्थात तंत्र, बिल्कुल अलग-अलग होते हैं। तीनों का लक्ष्य तो एक ही होता है ‘‘प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक या मौलिक अधिकारों की सुरक्षा‘‘ किन्तु तीनों की कार्यप्रणाली बिल्कुल अलग-अलग होती है। धर्म व्यक्ति को अच्छे कार्यो के लिये प्रेरित करता है, समाज व्यक्ति को अनुशासित करता है तथा राज्य शासित। तीनों की अपनी-अपनी सीमाएँ होती हैं। धर्म व्यक्तिगत आचरण तक सीमित होता है, समाज संगठनात्मक स्वरुप का तथा राज्य शक्ति सम्पन्न। धर्म न किसी को अनुशासित कर सकता है न ही दण्डित, समाज व्यक्ति या परिवार को बहिष्कृत कर सकता है किन्तु दण्डित नहीं और राज्य दण्डित कर सकता है। धर्म सिर्फ हृदय परिवर्तन कर सकता है। समाज व्यक्ति के सामाजिक अधिकार वापस ले सकता है और राज्य किसी को संवैधानिक मौलिक तथा सामाजिक अधिकारों से भी वंचित कर सकता है। धर्म कभी संगठन का स्वरुप नहीं ले सकता, संस्था का स्वरुप ले सकता है। धर्म व्यक्ति के व्यक्तिगत आचरण से पहचाना जाता है, पूजा पद्धति से नहीं। धर्म और सम्प्रदाय बिल्कुल भिन्न-भिन्न होते है। यदि कोई धर्म संगठन स्वरुप में है तो वह सम्प्रदाय ही होगा, धर्म नहीं। धर्म मात्र जीवन पद्धति में ही होता है। दुनियां में हिन्दू जीवन पद्धति अकेली है जिसे निश्चित रुप से धर्म कहा जा सकता है किन्तु इस्लाम सिख तथा साम्यवाद निश्चित रुप से सम्प्रदाय है धर्म नहीं। अन्य धर्मो को गुण-दोष के आधार पर मिश्रित ऑकलन करना होगा। धर्म किसी भी रुप में बल प्रयोग की अनुमति नहीं देता। समाज तथा राज्य अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिये सीमित बल प्रयोग की अनुमति देता है। यदि हम हिन्दुओं के धर्म या सम्प्रदाय का ऑकलन करें तो हिन्दुत्व तो निश्चितरुप से पूरी तरह धर्म है किन्तु अनेक हिन्दू अन्य सम्प्रदायों से मुकाबला की रणनीति के अन्तर्गत संगठन बनाकर हिसंक मुकाबला करने के मार्ग पर बढ़ रहे हैं। ऐसे व्यक्ति या संगठन सम्प्रदाय ही कहे जा सकते है, धर्म नहीं, भले ही वे अपने को हिन्दू ही क्यों न कहते हों। वर्तमान आपातकालीन परिस्थितियों में संप्रदाय संगठित होकर धर्म पर आक्रमण कर रहे हैं और ऐसे संकटकाल में हिंदुओं का एक समूह भी संगठित होने का प्रयत्न कर रहा है लेकिन मैं इसे इतना बड़ा संकट नहीं देखता की हिन्दू लाखों वर्षों की अपनी पहचान बदल कर इन अल्पकालिक संप्रदायों का अनुसरण करे। यही कारण है की मैं गुण प्रदहन हिन्दुत्व का पक्षधर हूँ संगठन प्रधान का नहीं। नई व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को संगठन बनाने की छूट होगी किन्तु ऐसे संगठन स्वयं को सम्प्रदाय ही कह सकते है, धर्म नहीं। किसी भी संगठन को, चाहे वह व्यावसायिक हो याधार्मिक या कोई अन्य, उसे संवैधानिक सामाजिक स्तर पर छूट तो होगी किन्तु मान्यता नहीं। ऐसे संगठनों को हर स्तर पर निरुत्साहित किया जायेगा। दूसरी ओर किसी भी प्रकार की संस्था को सामाजिक मान्यता प्राप्त होगी तथा उसे प्रोत्साहित भी किया जायेगा।

परिवार से लेकर केन्द्र सभा तक सामाजिक व्यवस्था के भाग है। इन्हें संवैधानिक मान्यता प्राप्त है किन्तु सामाजिक या राजनैतिक व्यवस्था एक दूसरे के कार्यो में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। यदि इन दोनों के बीच कोई टकराव होगा तो संविधान सर्वोच्च है तथा वही निपटारा करेगा। यदि कठिनाई होगी तो दोनों के प्रतिनिधि वर्तमान संसद और संविधान सभा के रुप में बैठकर संविधान संषोधन कर सकते हैं किन्तु यदि तंत्र और संविधान सभा के बीच फिर भी टकराव होता है तो जनमत संग्रह ही इसका अंतिम समाधान होगा। धर्म और संस्कृति अलग-अलग विषय होते हैं, यद्यपि दोनों में बहुत कुछ पूरकता भी है। धर्म व्यक्तिगत

आचरण तक सीमित होता है तो संस्कृति सामूहिक आचरण तक। धर्म में विचार अधिक होता है, भावना कम, किन्तु संस्कृति भावनात्मक ही अधिक होती है। भारत में धर्म की परिभाषा बदली तो संस्कृतिभी अपने आप बदल गई। कोई व्यक्ति बिना विचारे बार-बार किसी कार्य को करने लगे तो यह उसकी आदत बन जाती है। ऐसी आदत लम्बे समय तक बनी रहे तो वह उसका संस्कार बन जाती है। ऐसा संस्कार किसी इकाई के आम लोगों का बन जावे तो वह उस इकाई की संस्कृति बन जाती है। वर्तमान समय में भारतीय संस्कृति की दो मुख्य पहचान मानी जा सकती है। 1. मजबूत से दबना और कमजोर को दबाना 2. न्यूनतम प्रयत्न अधिकतम लाभ की अपेक्षा। यद्यपि ये दोनों संस्कार हमारी भारतीय संस्कृतिके बिल्कुल विपरीत हैं किन्तु स्वतंत्रता के बाद भारत ने जिस तरह साम्यवाद, पश्चिमतथा इस्लामिक संस्कृतिकी बेमेल खिचड़ी बनाई उसके स्वाभाविक परिणाम के रुप में ऐसा हुआ। नई व्यवस्था में तंत्र की भूमिका सीमित होकर सामाजिक व्यवस्था मजबूत होगी तब इस संस्कृति में धीरे-धीरे बदलाव आयेगा।

नई समाज व्यवस्था

1 नई समाज व्यवस्था में महिला-पुरुष वर्गभेद समाप्त करने की दिशा

नई समाज व्यवस्था में हम किसी भी प्रकार के वर्ग निर्माण को ही समाप्त करेंगे। भारत में वर्ग निर्माण के मामले में महिला और पुरुष के बीच आपसी संबंध कैसे हों, यह दुविधा बना दी गई है। महिलाओं और पुरुषों के बीच एक स्वाभाविक आकर्षण भी होता है, जो प्राकृतिक है। उसे हम सामाजिक व्यवस्था के द्वारा व्यवस्थित करते हैं, अनुशासित करते हैं, शासित नहीं। ऐसी परिस्थितियों में यदि महिला और पुरुष के बीच दूरी घटेगी, तो चुंबकत्व पद्धति के आधार पर विस्फोट भी हो सकता है। यदि दूरी आमतौर पर बढ़ेगी, तो सृजन में बाधा होना स्वाभाविक है। वर्तमान सरकार इस संबंध में दो तरफ कार्य कर रही है। एक तरफ दूरी बढ़ाने का प्रयास कर रही है, दूसरी तरफ घटाने का भी प्रयास कर रही है और यह संभव ही नहीं है कि दोनों दिशाओं में एक साथ चला जाए। लेकिन यह भी संभव नहीं है कि किसी एक दिशा में तेजी से बढ़ा जाए। इसलिए हम लोगों ने एक तीसरा मार्ग निकाला है कि महिला और पुरुष अपनी दूरी बढ़ाना चाहते हैं या घटाना चाहते हैं, इसका निर्णय परिवार करें, सरकार नहीं, समाज नहीं। महिला और पुरुष की दूरी के मामले में समाज में आवश्यकता से ज्यादा हस्तक्षेप किया है और अब समाज का काम राज्य ने ले लिया है। यही कारण है कि महिला और पुरुष के बीच टकराव बढ़ रहा है। हमारी पुरानी संस्कृति दूरी बढ़ाने की पक्षधर थी, नई संस्कृति घटाने की पक्षधर है और अब हम संदेश दे रहे हैं कि यह निर्णय परिवारों को करना चाहिए। परिवार को मिलकर निर्णय लेने की स्वतंत्रता दीजिए।

2 युवा, जवान और वृद्ध का बंटवारा परिवार तय करे, राज्य नहीं

भारत में जैन जी जैन अल्फा सशक्तिकरण की बहुत चर्चा हो रही है। साथ ही मैंने एक यह भी समाचार पढ़ा कि मेरठ की एक जेल में सर्वे किया गया तो वहाँ कुल कैदियों में से 50% से अधिक जैन जी कैदी निकले। अब प्रश्न उठता है कि जब कुल आबादी में जैन जी की संख्या 25% के ही आसपास है तब ऐसे अपराधों में इस प्रकार के बच्चों की भूमिका अपनी आबादी की तुलना में दोगुनी क्यों है। यदि आप ठीक से समझेंगे तो वृद्ध लोगों पर अत्याचार करने के मामले में भी जैन जी का प्रतिशत ही आपको अधिक मिलेगा चाहे वे महिला हों या पुरुष। अब यदि इन दोनों बातों पर विचार किया जाए तो एक गंभीर प्रश्न खड़ा हो जाता है कि क्या हम युवाओं के नाम पर उन्हें अधिक महत्व और शक्ति दें। क्या युवाओं में अन्य लोगों की तुलना में अपराधियों का प्रतिशत कम है और यदि नहीं है तो यह युवा जवान और वृद्ध का बँटवारा क्यों। यह बँटवारा समाज क्यों करेगा यह बँटवारा राज्य क्यों करेगा यह बँटवारा संविधान क्यों करेगा यह बँटवारा परिवार करेगा। परिवार के लोग आपस में बैठकर इस बात का निर्णय ले सकें कि हमें किस कमजोर को शक्तिशाली बनाना है और किस शक्तिशाली को कमजोर करना है। हम ऐसा क्यों मान लें कि परिवार के लोग इतना निर्णय नहीं कर सकेंगे और यह मुट्ठी भर राजनेता मुट्ठी भर धर्मगुरु हमारे परिवार के विषय में निर्णय करने की क्षमता रखते हैं। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ने परिवार व्यवस्था में अनावश्यक हस्तक्षेप किया है। हम राजनीतिक व्यवस्था में आमूल-चूल बदलाव के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था में भी कुछ सुधार करना चाहते हैं। यही कारण है कि हम परिवार व्यवस्था को सामाजिक और संवैधानिक व्यवस्था का आधार बनाने के पक्षधर हैं।

3 समय और परिस्थितियों के साथ नीतियों में बदलाव जरूरी

मेरा अपना निष्कर्ष है कि समय और परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, बदलते परिवेश में नीतियाँ भी बदली जानी चाहिए। जो समाज या राष्ट्र अपनी नीतियाँ नहीं

बदलते हुए पुरानी लीक पर चलते रहते हैं, उन्हें बहुत नुकसान होता है। या तो उसके कारण एक विद्रोह पैदा होता है अथवा कुछ बिना सोची-समझी गलत नीतियाँ समाज में प्रचलित हो जाती हैं। इसलिए यह अच्छा होगा कि हम देश, काल और परिस्थिति के अनुसार अपनी नीतियों में संशोधन करें। सिद्धांत तो जल्दी नहीं बदलते हैं, लेकिन नीतियाँ बदली जा सकती हैं। हम देख रहे हैं कि वर्तमान भारत सरकार महिलाओं और युवाओं के विषय में या तो गलत नीति पर चल रही है या पुरानी नीति पर चल रही है। अब नई परिस्थितियों में आप अनावश्यक सारे कानून हटा दीजिए, युवाओं और महिलाओं को भी समानता का अधिकार दीजिए। अब कानून की अधिकता समाज में अव्यवस्था पैदा कर रही है। इसी तरह मेरा यह मानना है कि अब सामाजिक व्यवस्था को भी अपने अंदर बदलाव लाना चाहिए। अब बच्चों और महिलाओं को आश्रित नहीं, बल्कि समानता के अधिकार दिए जाने चाहिए। आप परिवार को एक इकाई बना लीजिए। सरकार और समाज परिवार के मामले में बनाए गए सारे कानून जल्दी से जल्दी हटा ले। मैं तो इस मत का हूँ कि जितनी जल्दी सरकार और समाज पारिवारिक व्यवस्था को छूट दे देंगे, उतनी ही जल्दी समाज में अव्यवस्था और अराजकता दूर हो सकती है। सरकार और समाज के लोग यदि नहीं बदल पा रहे हैं तो किनारे हो जाएँ। हम सब लोग मिलकर इस नए बदलाव के लिए तैयार हैं।

4 शिक्षा और संस्कार के बावजूद परिवारों में क्यों बढ़ रहा टकराव

कल लखनऊ में एक परिवार में एक-दूसरे को गोली मार दी। दोनों उच्च शिक्षित थे, दोनों संस्कारित ब्राह्मण थे, दोनों बैंक के कर्मचारी थे, दोनों एकल परिवार में रहते थे। इसके बाद भी पति-पत्नी ने इस तरह अपनी जीवन-लीला समाप्त की। कल के अखबारों में ही आया कि एक लड़की ने संपत्ति के विवाद में अपने ही माता-पिता की हत्या कर दी। कल ही ऐसे कई समाचार भी आए, जब किसी महिला ने अपने प्रेमी के साथ मिलकर पति की हत्या कर दी, किसी पति ने अपनी पत्नी की बेवफाई को देखकर अपनी ही पत्नी की हत्या कर दी। इस प्रकार के सेक्स और संपत्ति के विवाद लगातार बढ़ते जा रहे हैं और हत्याएँ हो रही हैं, परिवार टूट रहे हैं। दूसरी तरफ हम इस समस्या के समाधान पर चर्चा न करके या तो सरकार पर भरोसा कर रहे हैं या अपनी पुरानी सामाजिक व्यवस्था से ही चिपके रहना चाहते हैं, जबकि समाज आगे बढ़ चुका है, सरकार असफल हो चुकी है। स्वाभाविक है कि वर्तमान नई परिस्थितियों में हमें सेक्स और संपत्ति के मामले में कुछ नए समाधान खोजने पड़ेंगे, क्योंकि यदि इस प्रकार नहीं खोजा गया तो हमारी भौतिक प्रगति, शैक्षिक उन्नति सब धरी की धरी रह जाएगी। हम लोगों ने 70 वर्षों से इस समस्या के महत्व को समझा, इसके समाधान पर प्रयोग भी किया और जिन परिवारों में यह प्रयोग हुआ, वहाँ पूरी तरह सफल भी हुआ। लेकिन दुर्भाग्य है कि सरकारी कानून के गुलाम और अपनी पुरानी धारणाओं से चिपके हुए रूढ़िवादी लोग इस विषय पर न चर्चा करने के लिए तैयार हैं, न समझने के लिए तैयार हैं। अब समय आ गया है कि हम सेक्स और संपत्ति के संबंध में नए नियम सोचें, नए प्रयोग करें। हमें गर्व है कि हम लोगों ने इस नए प्रयोग को कुछ सीमित परिवारों में सफल करके दिखाया है।

5 नई समाज व्यवस्था में परिवार को प्राथमिक इकाई बनाने का प्रस्ताव

हम नई समाज व्यवस्था का जिस तरह का प्रारूप सोच रहे हैं, उस व्यवस्था में हम लोगों ने परिवार व्यवस्था को प्राथमिक इकाई माना है। लेकिन परिवार व्यवस्था के मामले में हमारी सोच और अन्य लोगों की सोच में फर्क है। हम परंपरागत परिवार व्यवस्था को अब संशोधित करना चाहते हैं। हमारा यह मानना है कि परिवार प्राकृतिक इकाई नहीं, बल्कि संगठनात्मक इकाई होनी चाहिए। परिवार आपसी सहमति से ही चलना चाहिए, भले ही वह खून का रिश्ता हो या न हो। दूसरी बात कि हम परिवार में सबको समान अधिकार देना चाहते हैं और परिवार में अनुशासन अनिवार्य होगा। स्पष्ट है कि हमारी नीति में किसी भी व्यक्ति को परिवार छोड़ने की या परिवार से निकालने की पूरी स्वतंत्रता होगी, कोई कानूनी बंधन नहीं आएगा। इस तरह हम एक संशोधित परिवार व्यवस्था का प्रस्ताव दे रहे हैं। हमारे प्रस्ताव में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि यदि किसी संतान का जन्म होता है तो वह नई संतान माँ के नाम से जानी जाएगी। उसका पिता कौन है, इसकी कोई खोजबीन भी नहीं होगी, कोई पहचान भी नहीं होगी। पिता का मामला परिवार का आंतरिक मामला है, संवैधानिक नहीं। संविधान के अनुसार संतान माँ के साथ जुड़ेगी तथा माँ के परिवार में मानी जाएगी। इस तरह हम लोगों ने परिवार व्यवस्था में कुछ संशोधन किए हैं। हम लोकतांत्रिक परिवार के पक्ष में हैं, परंपरागत परिवार व्यवस्था के नहीं।

6 आरक्षण की बढ़ती राजनीति से समाज में बढ़ता विभाजन

एक तरफ भारत में सवर्ण-अवर्ण के बीच लड़ाई चल रही है, दूसरी तरफ भारत में युवा भी अब लड़ने के लिए तैयार खड़े हैं। अभी तक भारत में आरक्षण की आग बुझाई नहीं जा सकी है कि महिला आरक्षण के नाम से नया आरक्षण देश में पैदा कर दिया गया। अब इस नए आरक्षण की आग भी जल्दी ही लगेगी। एक तीसरे भी आरक्षण के बीज बोए गए हैं, वह है युवा आरक्षण। कुछ वर्षों के बाद युवा आरक्षण की भी माँग उठेगी। हमारे सामने जातीय आरक्षण, महिला आरक्षण, युवा आरक्षण और पता नहीं

आगे कौन-कौन से आरक्षण की आवाज़ सुनने को मिलेगी और यह गंदी आवाज़ हमारी समाज व्यवस्था को चूर-चूर कर देंगी। हम लंबे समय से यह सलाह दे रहे हैं, परिवार में कोई जाति नहीं होती, परिवार के अंदर कोई महिला नहीं होती, कोई युवा और वृद्ध नहीं होता। परिवार एक संयुक्त इकाई होती है। परिवार के अंदर कैसा आरक्षण? यदि किसी को आरक्षण देना है, वह सारा परिवार बैठकर तय करेगा। यदि कोई बीमार है तो उसका इलाज परिवार कराएगा। लेकिन यह नासमझ संवैधानिक व्यवस्था, जो अपनी समस्या हल नहीं कर पा रही हैं, वे आरक्षण के नाम पर समाज का बँटवारा कर रही हैं। हम आरक्षण का विरोध करें, उससे भी अधिक अच्छा है कि परिवार सशक्तिकरण का समर्थन करना चाहिए। यदि परिवार सशक्त होगा, आरक्षण अपने आप खत्म हो जाएगा, क्योंकि आरक्षण राजनेताओं का फूट डालो और राज्य करो का हथियार है और हम हथियार-विहीन हैं। आइए, अब आप सब मिलकर समस्याओं का समाधान, सशक्त परिवार अभियान, इस दिशा में आगे बढ़े।

7 राज्य सुरक्षा और न्याय तक सीमित हो, समाज संभाले अपनी सुविधाएं

वर्तमान समाज व्यवस्था में एक भ्रम फैला हुआ है कि समाज के दायित्व क्या हैं और कर्तव्य क्या हैं। दायित्व और कर्तव्य को अलग-अलग न समझने के कारण वर्तमान में अव्यवस्था फैल रही है। प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा करना समाज का दायित्व होता है और प्रत्येक व्यक्ति की सुविधाओं का ख्याल रखना समाज का कर्तव्य होता है। समाज अपने दायित्व को पूरा करने के लिए एक मैनेजर नियुक्त करता है, जिसे तंत्र कहा जाता है या हम उसे राज्य भी कह सकते हैं। इस तरह तंत्र की जिम्मेदारी होती है सुरक्षा और न्याय। दुर्भाग्य से समाज दायित्व और कर्तव्य का अंतर न समझने के कारण मैनेजर भी यह भूल जाता है कि उसका दायित्व क्या है और कर्तव्य क्या है। यह दुर्भाग्य ही है कि हमारा मैनेजर हमारे भोजन की चिंता करता है, हमारे रोजगार की चिंता करता है, शिक्षा और स्वास्थ्य की चिंता करता है, सुरक्षा की चिंता नहीं कर पाता, जबकि भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य यह मैनेजर का दायित्व नहीं है। इसलिए अब समाज को इस बात के लिए प्रशिक्षित करने की जरूरत है कि वह अपने दायित्व और कर्तव्य को अलग-अलग समझे और मैनेजर भी अपने दायित्व और कर्तव्य को अलग-अलग समझे। हम मैनेजर को और मालिक को दोनों को प्रशिक्षित कर रहे हैं कि वह कर्तव्य अलग समझे, दायित्व अलग समझे। हम इस कार्य की शुरुआत कर चुके हैं। शराफत से समझदारी का प्रशिक्षण हमारे इसी प्रयत्न का एक भाग है।

8 समाज में केवल तीन प्रवृत्तियां देव, मनुष्य और राक्षस

हम प्रवृत्ति के आधार पर समाज में दो प्रकार के लोग देखते हैं, एक अच्छे और एक बुरे। लेकिन भौतिक स्वरूप में व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैं, एक अच्छे, दूसरे मध्यम, तीसरे बुरे। एक को कहते हैं हम देव, एक को कहते हैं मनुष्य, एक को कहते हैं राक्षस। इन्हें हमने एक नंबर, दो नंबर और तीन नंबर के रूप में भी विभाजित किया है। एक नंबर के वे लोग हैं जो अपने घर का कुछ नुकसान करके भी दूसरों की मदद करते हैं। दो नंबर के वे लोग हैं जो कभी दूसरों की मदद भी कर सकते हैं और कभी अपराधियों की मदद भी कर सकते हैं। वे अपना व्यक्तिगत लाभ देखते हैं, पारिवारिक लाभ देखते हैं। तीन नंबर के वे लोग हैं जो हमेशा दूसरों का नुकसान करके अपना लाभ देखते हैं। ये कभी-कभी दूसरों का नुकसान करने में अपना नुकसान भी करते रहते हैं। इस प्रकार हम जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, लिंग या अन्य किसी भी प्रकार के वर्ग-विद्वेष को अस्वीकार करते हैं। हम सिर्फ तीन ही वर्ग मान रहे हैं। हमारा यह भी आकलन है कि अच्छे लोगों का प्रतिशत समाज में लगभग 1 से 2 के आसपास होता है, बुरे लोगों का प्रतिशत भी लगभग 1 से 2 के करीब ही होता है, बाकी बीच के लोग 96 या 97% होते हैं। यदि बुरे लोगों का प्रतिशत आधे से भी कम हो तो हमें बीच के लोगों के साथ दूरी बनाकर रखनी चाहिए। यदि बुरे लोगों का प्रतिशत 2 से ज्यादा हो जाए तो हमें बीच के लोगों के साथ अच्छा संबंध बनाकर रखना चाहिए। इस तरह हमें स्थिति अनुसार बीच के लोगों के साथ व्यवहार तय करना पड़ता है। बुरे लोग हमेशा चाहते हैं कि बीच के लोग उनके साथ जुड़े रहें और अच्छे लोग हमेशा यह मूर्खता करते रहते हैं कि वे बीच के लोगों को दूर करते रहें। यही कारण है कि हम पूरी ताकत से तीन नंबर के खिलाफ एक नंबर और दो नंबर को मिलाकर संघर्ष करना चाहते हैं।

मुनि जी की विविध विषयों पर लेख

1 लोकतंत्र से लोक स्वराज की ओर परिवर्तन

मैंने पिछले तीन दिनों में यह बात स्पष्ट की है कि वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था पूरी तरह असफल सिद्ध हो गई है और इसमें आमूल-चूल बदलाव की आवश्यकता है। गंभीर प्रश्न है कि यह बदलाव क्या होगा और कैसे होगा। इस संबंध में हम लोगों ने समझा है। हम वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था की जगह पर लोक स्वराज की व्यवस्था लाना चाहते हैं। इस तरह हम पूरी संवैधानिक व्यवस्था में आमूल-चूल बदलाव के पक्षधर हैं और इस

दिशा में हम लगातार काम कर रहे हैं। लेकिन यदि ऐसा बदलाव अभी काफी दूर है, निकट भविष्य में संभव नहीं है, तो हम इस बदलाव के प्रयत्न तो जारी रखेंगे, लेकिन हम तत्काल इस लोकतंत्र को एक सुधरे हुए लोकतंत्र में बदलना चाहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हम एक महत्वपूर्ण बदलाव तुरंत चाहते हैं कि संसद के अंदर पक्ष और विपक्ष न हो, सब निष्पक्ष हों। प्रत्येक सांसद को संसद में अपनी बात रखने की स्वतंत्रता हो। संसद के अंदर सत्तारूढ़ दल और विपक्ष की कोई भूमिका न हो। हम संसद के अंदर निर्दलीय लोकतंत्र चाहते हैं। हमें उम्मीद है कि इस निर्दलीय लोकतंत्र से कुछ चीजें सुधर जाएँगी। फिर भी लोक स्वराज्य पर जन-जागरण हमारा जारी रहेगा। लोक स्वराज का प्रारूप और ढाँचा क्या होगा, वह हम लोगों ने पूरा बना लिया है और लगातार उस पर स्वतंत्र विचार-मंथन भी चलता रहता है।

2 भारत देश और राज्य है, राष्ट्र नहीं

हमारी अपनी परिभाषा में भारत एक देश है, राज्य है, राष्ट्र नहीं। हम ऐसा मानते हैं कि देश और राज्य की एक भौगोलिक सीमा होती है, एक संवैधानिक शासन व्यवस्था होती है, एक आबादी होती है। यह तीनों बातें भारत में हैं। आबादी भी 140 करोड़ है, क्षेत्रफल भी बहुत बड़ा है, संप्रभु संवैधानिक शासन भी है, लेकिन संवैधानिक समाज व्यवस्था भारत में नहीं है। भारत की समाज व्यवस्था राज्य के नियंत्रण में है, इसलिए हम भारत को राष्ट्र नहीं कह सकते। अब हम भारत को राष्ट्र बनाना चाहते हैं। इसका अर्थ यह है कि भारत संवैधानिक शासन व्यवस्था के साथ-साथ एक संवैधानिक समाज व्यवस्था के अंतर्गत भी कार्य करेगा। अर्थात भारत में शासन व्यवस्था अलग होगी, समाज व्यवस्था अलग होगी और यह दोनों व्यवस्थाएँ किसी समाज-निर्मित संविधान के अंतर्गत कार्य करेंगी। संविधान दोनों का मिलाकर एक भी हो सकता है और अलग-अलग भी हो सकता है। संविधान निर्माण में समाज की प्रमुख भूमिका होगी।

3 मंदिरों के भ्रष्टाचार से बड़ा प्रश्न सरकारी भ्रष्टाचार का

मेरे एक मित्र ने यह लिखा है कि देश में मंदिरों के पास जितना सोना या पैसा है, यदि वह सारा पैसा देश में चल रही योजनाओं पर लग जाए तो देश का बहुत भला हो जाएगा। अभी राम मंदिर में चढ़ावा चोरी प्रकरण में भी बहुत लोगों ने यह सलाह दी कि सरकार को इस मामले में हस्तक्षेप करना चाहिए और मंदिर की व्यवस्था में सरकार की भी प्रत्यक्ष भूमिका होनी चाहिए। इस तरह की आवाज देश में अन्य जगहों से भी उठती है कि मंदिरों में घपले हो रहे हैं और सरकार उसमें प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं कर रही है, सरकार को दखल देना चाहिए। मैंने भी इस विषय पर बहुत सोचा है। मैं यह भी जानता हूँ कि भारत में कुल मिलाकर जितनी टैक्स चोरी होती है, उससे अधिक पैसा मंदिरों में या अन्य जगहों पर दान दे दिया जाता है। प्रश्न यह उठता है कि मंदिरों में चोरी हो रही है, भ्रष्टाचार हो रहा है, यह बात सच है, लेकिन क्या मंदिरों की तुलना में सरकारी विभागों में कई गुना अधिक भ्रष्टाचार नहीं हो रहा है? क्या यह उचित नहीं होगा कि सरकार की व्यवस्था भी मंदिरों के हाथ में दे दी जाए? आखिर मंदिरों में दिया गया पैसा दान का है, स्वेच्छा का है। सरकार जो पैसा लेती है, वह कानून, पुलिस और सेना से डरा कर लेती है। क्या यह उचित होगा कि मंदिरों में भ्रष्ट सरकार का हस्तक्षेप कर दिया जाए? मैं इससे सहमत नहीं हूँ। सरकार अगर टैक्स लेना कम कर दे तो भ्रष्टाचार अपने आप कम हो जाएगा। सरकार यदि ईमानदार हो जाए तो लोग मंदिरों की अपेक्षा सरकार को अधिक धन देने लग जाएँगे। मंदिरों की व्यवस्था में सरकार का हस्तक्षेप बढ़ाना क्यों उचित है, इस पर गंभीरता से विचार करिए।

4 नरम हिंदुत्व धार्मिक कट्टरवाद के विरुद्ध हमारी स्पष्ट सोच

हम लोगों की लाइन बिल्कुल साफ है। हम नरम हिंदुत्व के पक्षधर हैं। हम किसी भी प्रकार के कट्टरवादी हिंदुत्व के पक्ष में नहीं हैं। हम देश को धर्म के आधार पर विभाजित होना गलत मानते हैं। हम यह मानते हैं कि मुसलमान में भी कुछ अच्छे लोग हैं और हिंदुओं में भी कुछ गलत लोग हैं। यह प्रतिशत कम-ज्यादा हो सकता है, लेकिन शून्य नहीं है। अब धीरे-धीरे यह बात साफ होती जा रही है कि गोडसेवादी, तोगड़ियावादी, ठाकरे परिवार के पक्षधर इस प्रकार के कट्टरवादी तत्व मोहन भागवत, नरेंद्र मोदी, आदित्यनाथ से निराश हो रहे हैं। उन लोगों ने यह माना था कि अगर हमारी सरकार आएगी तो भारत हिंदू राष्ट्र होगा, मुसलमान को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रखेंगे, लेकिन हम लोगों ने समान नागरिक संहिता को महत्व दिया और अभी भी हम मानते हैं कि भारत धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए। भारत का विभाजन शरीफ और बदमाश के बीच ही होना चाहिए। हम प्रवृत्ति के आधार पर विभाजन के पक्षधर हैं, धर्म या जाति के आधार पर नहीं। इसलिए हम धार्मिक कट्टरवाद के पूरी तरह विरुद्ध हैं। हमें खुशी है कि हम लोगों की बात अब धीरे-धीरे देश समझने लगा है। अभी अयोध्या में बैठकर हम लोगों का जो सम्मेलन हुआ, उसमें संघ, गायत्री परिवार, सर्वोदय, आचार्य कुल, आर्य समाज तथा अन्य इस तरह के नरम हिंदुत्व के पक्षधर सारे लोग एकजुट होकर यह एक संयुक्त संदेश दिए कि भारत नरम हिंदुत्व की दिशा में बढ़ेगा। हम किसी भी प्रकार की सामाजिक हिंसा के विरुद्ध हैं। हमें खुशी है कि लगातार मोहन भागवत ठीक दिशा में समाज को संदेश दे रहे हैं। हमें गर्व है कि हमें मोहन भागवत जी का भी पूरा-पूरा मार्गदर्शन मिलता है। हमारी इच्छा है कि हम नरेंद्र मोदी

और मोहन भागवत के नेतृत्व में दुनिया को नरम हिंदुत्व का संदेश देने में सफल हो सकें।

5 अभिजीत दीपक की कॉकरोच पार्टी के पीछे कौन-सी शक्ति?

अभी कुछ महीने पहले ही हमने एक अजूबा देखा। अभिजीत दीपक ने एक कॉकरोच पार्टी का गठन किया और 10 दिनों में ही उस कॉकरोच पार्टी की सदस्यता दो करोड़ से अधिक हो गई। इस सदस्यता में विदेशियों की संख्या भी बड़ी थी। मैं बहुत गंभीरता से सोचता रहा कि आखिर इस कॉकरोच पार्टी में ऐसा क्या था जिसमें दीपक के अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति को कोई खास बात महसूस हुई। ना तब तक नाम का कोई महत्व था, न दीपक का कोई महत्व था, ना कोई सिद्धांत थे। फिर एक बात और है कि आखिर वह कौन-सी तकनीक थी जिस तकनीक से इतने कम समय में इतनी बड़ी संख्या में लोगों को जोड़ दिया। या तो कोई ऐसा संगठन दुनिया में रहा होगा जिस संगठन के आधार पर तत्काल लोग इससे जुड़ गए अथवा यदि कोई संगठन नहीं होगा तो कोई तकनीक रही होगी जिस तकनीक को कोई व्यक्ति अच्छी तरह जानता होगा क्योंकि या तो कोई तकनीक है या कोई संगठन है अन्यथा इन दोनों बातों को छोड़कर कोई ऐसी तीसरी बात नहीं है जिस आधार पर दुनिया के इतने लोग इस कॉकरोच पार्टी से जुड़ जाएँ और यदि वे लोग सोच-समझकर जुड़ गए तो मुझे उनकी समझदारी पर संदेह होता है। इसलिए मैं आप मित्रों से जानना चाहता हूँ कि इसमें क्या रहस्य है। मुझे कई लोगों से पूछने पर भी यह बात अब तक पता नहीं चली क्योंकि आखिर ऐसा कौन व्यक्ति है जिसकी दुनिया में इतनी एप्रोच है या जिसके पास इतनी अच्छी तकनीक है अथवा कोई और तीसरा आधार है उस व्यक्ति के विषय में कुछ जानकारी तो लेनी उचित है।

6 जन-जागरण से संसद और अब सड़क के आंदोलन तक

जेन जी द्वारा जंतर मंतर पर और रांची में छात्रों के आंदोलन के बाद यह प्रश्न उठने लगा है कि क्या देश ठीक दिशा में जा रहा है। इस विषय पर भी मैंने विचार किया। पहले देश में बदलाव के लिए जन-जागरण पर भरोसा था, उसके बाद देश में बदलाव के लिए संसद पर भरोसा शुरू हुआ, लेकिन विपक्ष दोनों जगह से निराश हुआ और तब विपक्ष ने एक तीसरा मार्ग चुना, सड़कों का, जन आंदोलन का। यह इतना एकाएक हुआ कि पहले किसी को आभास नहीं हुआ कि अब विपक्ष अपनी लाइन बदल रहा है। यही कारण है कि सत्ता पक्ष को अपनी लाइन बदलने में थोड़ी-सी देर हुई। अब वह खतरा टल गया है, लेकिन अब पूरे देश भर में आंदोलन की एक नई लहर पैदा होगी। सरकार भी इसके लिए तैयार हो रही है, क्योंकि नक्सलवाद पर नियंत्रण और मुस्लिम सांप्रदायिकता पर सफल अंकुश के बाद अब सरकार को इस नए खतरे से निपटना है। आंदोलन के नाम पर आई हुई सड़कों पर हिंसक भीड़ से निपटने के लिए सरकार को कुछ कानूनी प्रावधान भी करने पड़ेंगे। जिस तरह की लोकतांत्रिक स्वतंत्रता अभी तक दी गई है, उसमें कुछ बदलाव भी हो सकते हैं। लेकिन इस आंदोलन की बढ़ती प्रवृत्ति को रोकने के लिए सरकार को कुछ ना कुछ करना ही होगा। मुझे यह आभास दिखता है कि जिस तरह नक्सलवाद चरम पर आया, समाधान हो गया, मुस्लिम सांप्रदायिकता चरम पर आई तो समाधान हो गया, इस तरह यह जन आंदोलन का सैलाब भी चरम पर आएगा तो इसका भी समाधान हो सकता है। सरकार सफलतापूर्वक आगे जा रही है, चिंता की कोई बात नहीं है। मेरी अपने सभी साथियों को यह सलाह है कि आप किसी भी प्रकार के जन आंदोलन से दूर रहें। हम जन-जागृति और लोकतांत्रिक तरीके पर ही विश्वास करेंगे।

7 आतंकवाद के आरोपों के बीच मुस्लिम समाज के सामने बड़ा सवाल

भारत के गृह मंत्री ने यह घोषणा की कि हमने भारत में शहजाद भट्टी के गैंग का सफाया कर दिया है। शहजाद भट्टी गैंग के भारत में प्रमुख कार्यकर्ताओं की संख्या लगभग 200 थी। उन 200 लोगों को 14 प्रदेशों में से खोज-खोज कर एक साथ गिरफ्तार कर लिया गया है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि इन सभी आतंकवादियों में सारे के सारे मुसलमान हैं, कोई हिंदू नहीं है। इसका मतलब यह है कि शहजाद भट्टी को इस बात का पूरा विश्वास था कि भारत का हिंदू आतंकवाद के मामले में विश्वसनीय नहीं हो सकता है। यही कारण है कि उसने जिन भी लोगों को आतंकवाद से जोड़ा, वे सब के सब मुसलमान निकले। अभी कुछ दिन पहले ही अमेरिका और संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी कुछ आतंकवादियों की सूची प्रकाशित की है। उस सूची में भी किसी हिंदू का नाम नहीं है। यह भी आश्चर्यजनक है कि सारी दुनिया में आतंकवाद के मामले में किसी हिंदू का नाम नहीं है और आतंकवाद के मामले में आबादी की तुलना में मुसलमान का प्रतिशत बहुत ज्यादा है। यह बात दुनिया के मुसलमान को सोचना चाहिए और कम से कम भारत के मुसलमान को इस बात पर गंभीरता से सोचना चाहिए कि यह इतना बड़ा कलंक उन पर क्यों लग रहा है। इस कलंक में कितनी सच्चाई है और कितना झूठ है, यह उत्तर भारत के मुसलमान को देना चाहिए।

8 परिवार के आंतरिक मामलों में कानून की भूमिका पर पुनर्विचार

आज मैं रायपुर की एक घटना पर अपने विचार व्यक्त किए थे। पक्ष-विपक्ष में कई प्रकार के विचार आए और अभी आएँगे ही। लेकिन मेरा अब भी मानना है, सेक्स एक प्राकृतिक भूख है। उसे अनुशासित किया जा सकता है,

लेकिन बलपूर्वक नहीं रोका जा सकता है, क्योंकि बलपूर्वक रोकने से विध्वंस का भी खतरा होता है। हमारे पुराने जमाने के ऋषि-मुनि काम की शक्ति को अच्छी तरह पहचानते थे। इसीलिए उन्होंने यह व्यवस्था दी थी कि देवर और भाभी के आपसी संबंध स्थिति अनुसार माँ-बेटे के समान भी हो सकते हैं और परिस्थिति अनुसार पति-पत्नी के समान भी हो सकते हैं। जो होगा, इसका निर्णय परिवार करेगा, रिश्ते-नाते के लोग करेंगे। इस मामले में समाज को हस्तक्षेप विशेष परिस्थिति में ही करना चाहिए, सामान्यतः नहीं और कानून का तो यह विषय ही नहीं है। देवर-भाभी के संबंध कैसे हों, इससे क्या लेना-देना है समाज को और क्या लेना-देना है कानून को। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि समाज और कानून को अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। परिवार के अपने आंतरिक मामलों में परिवार को अधिकतम स्वतंत्रता दे देनी चाहिए।

9 राहुल गांधी अच्छाइयों और बुराइयों का एक आकलन

मैं राहुल गांधी के विषय में पहले भी लिख चुका हूँ कि राहुल गांधी में कुछ अच्छाइयाँ भी हैं, कुछ बुराइयाँ भी हैं। राहुल गांधी को राजनीति की बिल्कुल समझ नहीं है, व्यवहार में बहुत बचपना है, घमंड बहुत अधिक है, नशा करने का भी बहुत संदेह व्याप्त है। इन सब के बाद भी राहुल गांधी में कुछ अच्छाइयाँ भी हैं। राहुल गांधी आर्थिक दृष्टि से पूरी तरह ईमानदार हैं। राहुल गांधी का झूठ तुरंत पकड़ा जाता है, क्योंकि उनके अंदर षड्यंत्र की क्षमता नहीं है। राहुल गांधी जबान के भी बिल्कुल पक्के हैं, जिसको जो कह देते हैं, उसे बहुत दूर तक निभाते हैं। इस तरह राहुल गांधी को एक अच्छा-भला, नासमझ, घमंडी राजनेता माना जा सकता है। आपने देखा होगा कि जिस समय लालू यादव के भ्रष्टाचार को बचाने के लिए मनमोहन सिंह कानून बना रहे थे, तो राहुल गांधी ने बेरहमी से उस ड्राफ्ट को फाड़ दिया था। यह राहुल गांधी की तानाशाही भी थी और भ्रष्टाचार के प्रति नफरत भी थी। कल भी राहुल गांधी ने झारखंड के मुख्यमंत्री को कठोरता से आदेश देकर छात्रों से समझौता करने के लिए बाध्य कर दिया, क्योंकि राहुल गांधी को यह पूरा विश्वास है कि झारखंड के मुख्यमंत्री ने बड़ा भ्रष्टाचार किया है। मैं मानता हूँ कि छात्रों का आंदोलन एक बार रुक गया, लेकिन इससे अनेक तरह की प्रशासनिक कठिनाइयाँ भी पैदा होंगी, जो मुख्यमंत्री आसानी से नहीं संभाल सकेंगे। लेकिन फिर भी राहुल गांधी ने दबाव डालकर अपनी बात मनवाई। इस तरह राहुल गांधी की अच्छाइयों और बुराइयों का एक आकलन किया जा सकता है। कुल मिलाकर मैं यह कह सकता हूँ कि राहुल गांधी को ना प्रधानमंत्री बनना चाहिए, न बनाना चाहिए, क्योंकि देश किसी भले आदमी से चल नहीं सकेगा। देश को चलाने के लिए किसी समझदार आदमी की जरूरत है।

10 आजम खान के पतन के पीछे तीन कारणों का विश्लेषण

पिछले दो-तीन दिनों से आजम खान की यूनिवर्सिटी से जुड़े अनेक मामलों में छापे पड़ रहे हैं। आजम खान एक तरफ जेल की सजा भोग रहे हैं, दूसरी तरफ उनका साम्राज्य उनकी आँखों के सामने ढह रहा है। देर-सबेर यूनिवर्सिटी भी बर्बाद होगी ही। गेहूँ के साथ घुन भी पिसेगा। इनके अनेक रिश्ते-नाते, मित्र भी इस चपेट में आएँगे। प्रश्न उठता है कि आजम खान ने परिस्थितियों के अनुसार अपने अंदर बदलाव क्यों नहीं किया। जब आजम खान यह बात अच्छी तरह समझ गए थे कि यदि तीन बातें एक साथ इकट्ठी होंगी तो बर्बादी निश्चित है। पहली बात है मुसलमान होना, दूसरी बात है विपक्ष में होना और तीसरी बात है भ्रष्टाचार के कीर्तिमान बनाना। आजम खान में तीनों बातें एक साथ थीं। आजम खान ने इसके पहले मुजफ्फरनगर कांड में भी बहुत ही पक्षपात किया था। आजम खान का सारा जीवन सांप्रदायिक रहा है, लेकिन इसके बाद भी आजम खान ने त्रि-सूत्री सिद्धांत को नहीं समझा और परिणाम आज आपके सामने है। मैं मानता हूँ कि भ्रष्टाचार उन्होंने किया था, उसमें कोई सुधार संभव नहीं था। मुसलमान वह थे ही, उसमें भी सुधार संभव नहीं था, लेकिन उन्होंने परिस्थितियों को समझते हुए खुलकर विपक्ष में रहना ही ठीक समझा तो भाई, सिद्धांत का परिणाम तो निकलेगा ही। अभी और देखते जाइए, आगे-आगे क्या होता है।

11 रामानुजगंज से नक्सलवाद के विरुद्ध संघर्ष का अनुभव

भारत के प्रधानमंत्री ने नक्सलवाद पर कुछ टिप्पणी की थी। इसके विरोध में चिदंबरम, अरविंद केजरीवाल, महबूबा मुफ्ती नक्सलवाद के समर्थन में सामने आ गए। मैंने भी नक्सलवाद को बहुत नजदीक से अनुभव किया है, शायद भारत में इतना प्रत्यक्ष अनुभव और किसी को ना हो। इसके लिए आप 1997 से 2005 तक के इतिहास में जा सकते हैं। उस कालखंड तक हमारे जिले में नक्सलवाद आया ही नहीं था, लेकिन मैं नक्सलवाद को व्यवस्था परिवर्तन समझता था, क्योंकि गांधीवादियों से मैं यही समझा था। यहाँ तक कि मध्य प्रदेश सरकार ने मुझे नक्सलवादी घोषित करके गोली मारने का भी आदेश दिया था, जिसमें गांधीवादियों ने मुझे बचा लिया। फिर जबलपुर उच्च न्यायालय ने भी मेरी रक्षा की। दो-तीन वर्षों के बाद हमारे जिले में झारखंड से नक्सलवाद आ गया और हमारा पूरा जिला नक्सलवादी हो गया। तब मैंने नक्सलवाद को नजदीक से देखा और समझा कि नक्सलवाद व्यवस्था परिवर्तन नहीं है, हिंसक सत्ता संघर्ष है। और मैंने नक्सलवाद को समाप्त करने का बीड़ा उठा लिया। 2005

आते-आते तक हमारा जिला नक्सलवाद की समाप्ति में सफल हो गया। मैं यह कह सकता हूँ कि नक्सलवाद के समापन का सबसे पहला प्रयोग हमारे बलरामपुर-रामानुजगंज जिले से हुआ है और बाद में यह बढ़ता चला गया। इस पूरी घटना पर एक राष्ट्रीय स्तर के पत्रकार राकेश कुमार ने कई दिन रामानुजगंज में रहकर रिसर्च करके अखबारों में प्रकाशित भी किया है। इस तरह मैं चिदंबरम, केजरीवाल और महबूबा मुफ्ती को बताना चाहता हूँ कि नक्सलवाद बहुत खतरनाक सच है और इन तीनों को ऐसी मूर्खता नहीं करनी चाहिए।

12 महिला उत्पीड़न के कानून और विशेष अधिकारों पर पुनर्विचार

हम पहले भी आसाराम बापू, राम रहीम अथवा कुछ अन्य मामलों में यह देख चुके हैं कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी बड़े से बड़े अपराध में भी दंडित ना करा पाने के बदले में यदि महिला उत्पीड़न का छोटा सा आरोप भी लगा दिया जाए तो वह व्यक्ति गंभीर सजा पा सकता है। इसका सबसे ताजा उदाहरण है तरुण तेजपाल का। तरुण तेजपाल ने बहुत मामूली गलती की थी, वैसी गलतियाँ आमतौर पर होती रहती हैं, लेकिन तरुण तेजपाल अपने तहलका के उपयोग के आधार पर लोगों को अनावश्यक परेशान करने के लिए बदनाम थे और लोग उनका कुछ नहीं बिगाड़ पा रहे थे। ऐसी स्थिति में कुछ प्रभावशाली लोगों ने मिलकर तरुण तेजपाल की इस छोटी सी गलती का गंभीर दुरुपयोग किया और तरुण तेजपाल को 10 वर्ष के कारावास का दंड दिया गया। अब आप सोच सकते हैं कि महिलाओं के नाम पर किस तरह ब्लैकमेल करने की समाज में ताकत बढ़ गई है। तरुण तेजपाल की घटना दो संदेश देती है। पहला संदेश यह है कि महिलाओं की ब्लैकमेलिंग पावर बहुत बढ़ गई है और दूसरा संदेश यह है, यदि आप किसी अन्य माध्यम से समाज को ब्लैकमेल करते हैं तो समाज के ऐसे सब लोग आप पर महिला उत्पीड़न के बहाने आपको ज्यादा परेशान करने की क्षमता रखते हैं। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि हमारी सारी प्रशासनिक व्यवस्था में बदलाव होना चाहिए। ना कोई महिला ब्लैकमेल कर सके और ना कोई पत्रकार ब्लैकमेल कर सके। इन दोनों के विशेष अधिकार समाप्त कर देने चाहिए। सारी समस्याओं की जड़ में तरुण तेजपाल है, ना वह आरोप लगाने वाली महिला है, बल्कि सारी समस्याओं की जड़ वह सरकार द्वारा दिए गए विशेष अधिकार हैं, जो पत्रकारों को मीडिया के नाम पर प्राप्त हैं और महिलाओं को महिला सशक्तिकरण के नाम पर। सारी समस्या की जड़ विशेष अधिकार है।

13 वंदे मातरम्: राष्ट्रीय गीत से राजनीतिक टकराव तक

भारतीय राजनेताओं के बीच इस समय वंदे मातरम् गीत को लेकर दिन-रात टकराव हो रहा है । वंदे मातरम् का मामला पूरी तरह राष्ट्रीय है याराजनीतिक है उसके साथ कोई सामाजिक व्यवस्था संबद्ध नहीं है फिर भी हम वंदे मातरम् गीत को एक राष्ट्रीय गीत मानकर उस पर चर्चा करना उचित समझते हैं। यह सच बात है किस्वतंत्रता संघर्ष में इस गीत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी उस समय हिंदू मुसलमान के बीच कोई टकराव नहीं था सब एक साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष कर रहे थे ।उस समय इस गीत के 6 छंद गए जाएं या दो यह महत्वपूर्ण नहीं था क्योंकि हिंदू और मुसलमान सभी एक दूसरे की भावनाओं का ख्याल रखते थे। इसीलिए मुसलमान की आपत्ति पर सभी हिंदुओं ने एकजुट समर्थन दे दिया था ठीक है दो ही छंद गए जाएं।पूरे स्वतंत्रता संघर्ष में यह दो छंदों का उपयोग होता रहा यद्यपि पूरे गीत का भी कहीं कोई विरोध नहीं हुआ। इसके बाद भी मुसलमान ने अलग पाकिस्तान बनवा लिया लेकिन जब भारत स्वतंत्र हुआ तो स्वतंत्रता के समय कुछ राजनेताओं की सांप्रदायिकता बहुत मजबूत हो गई और उन्होंने वंदे मातरम के दो छंदों को भी अनावश्यक मान लिया जबकि स्वतंत्रता संघर्ष में वंदे मातरम की भूमिका थी जन गण मन की अधिक नहीं थी फिर भी सांप्रदायिक आधार पर स्वतंत्रता के बाद वंदे मातरम के दो छंदों को भी पीछे कर दिया गया। जब तक भारत में हिंदुओं को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रखा गया तब तक वंदे मातरम के दो छंदों को भी महत्व नहीं दिया गया लेकिन अब सरकार बदली अब हिंदू फ्रंट फुट पर खेल रहे हैं ऐसी स्थिति में हिंदुओं ने यह उचित समझा कि हम अब पूरे 6 छंदों को अनिवार्य कर दें ।मुझे लगता है कि जब मुसलमान ने पाकिस्तान का बंटवारा कर ही लिया तो यदि 6 छंद स्वीकार किए जाते हैं उसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि स्वतंत्रता के बाद आपने दो छंदों को भी स्वीकार नहीं किया था। बड़ी मुश्किल से अब हिंदू मुसलमान का विवाद कम होना शुरू हुआ था लेकिन वंदे मातरम के टकराव के बाद फिर से विपक्ष ने उस विवाद को हवा दे दी है मेरे विचार से मुसलमान को इस मामले में सावधान रहना चाहिए।

14 प्रदेश सरकारों के स्थान पर शक्तिशाली संघ सरकार

हम नई राजनीतिक व्यवस्था में दो तरह की सरकार बनाएंगे। एक केंद्र सरकार होगी और एक संघ सरकार होगी। प्रदेश सरकार या अन्य सारी सरकारें समाप्त हो जाएंगी। केंद्र सरकार के पास सुरक्षा और न्याय तथा कुछ अन्य विभाग होंगे। संघ सरकार के पास बाकी सारे विभाग होंगे। वर्तमान समय में प्रदेश सरकार और केंद्र सरकार के बीच जो टकराव होता रहता है, वह पूरी तरह गलत है। सुरक्षा और न्याय में संघ सरकार का कोई सीधा हस्तक्षेप

नहीं होगा, लेकिन अन्य सारे मामले संघ सरकार देखेगी। वर्तमान भारत में प्रतिदिन कभी पानी का टकराव, कभी खदान का टकराव, कभी टैक्स का टकराव, कभी भाषा का टकराव—रोज कोई न कोई टकराव होते रहते हैं प्रदेश और केंद्र के बीच। इस प्रकार के टकराव बहुत घातक हैं। इसलिए हम प्रदेश सरकारों को खत्म करके सारे अधिकार संघ सरकार को दे रहे हैं और सुरक्षा तथा न्याय केंद्र सरकार के पास रहेगा। हम केंद्र और संघ के नाम भले ही बदल सकते हैं, लेकिन पृष्ठभूमि इसी तरह रहनी चाहिए। इस तरह हम लोकतंत्र की वर्तमान सड़ी-गली परिभाषा को बदलना चाहते हैं।

15 आरक्षण के विरोध में आंदोलन और नए मार्ग की तलाश

मैं शुरू से ही आरक्षण के विरुद्ध रहा। मैं गांधी को मानने वाला हूँ और गांधी भी किसी तरह के आरक्षण के पक्ष में नहीं थे। गांधी भी चाहते थे कि सबको योग्यता के अनुसार काम मिले, लेकिन अंबेडकर की जिद्द ने एक आरक्षण का प्रावधान लागू कर दिया था और अंबेडकरवादियों ने ब्लैकमेल करके इस आरक्षण के प्रावधान को लगातार मजबूत किया, जिसे नेहरू परिवार का पूरा-पूरा समर्थन मिला और आज भी मिल रहा है। इसलिए आरक्षण के विरुद्ध यदि कोई आंदोलन होता है तो मैं उस आंदोलन के खिलाफ नहीं हूँ। अंबेडकरवादियों को ब्लैकमेलिंग से रोका ही जाना चाहिए। फिर भी मैं ऐसे किसी आंदोलन में अभी सहयोग नहीं करूंगा क्योंकि यदि अंबेडकरवादियों के विरुद्ध फिर से कोई सवर्ण अवर्ण उच्च नीच का मार्ग खुलता है तो वह भी कोई अच्छा मार्ग नहीं है। इस तरह दो ब्लैकमेलर अगर आपस में लड़ते हैं तो एक तीसरा मार्ग निकल सकता है इसलिए इस आरक्षण के विरुद्ध आंदोलन को बढ़ाने की जरूरत है जिससे आरक्षण के मामले में कोई एक नया मार्ग निकल सके। मैं चाहता हूं कि आरक्षण के विरोध में यह आंदोलन और मजबूत हो जिससे अंबेडकरवादियों की शक्ति कम हो जाए। और समाज के सभी वर्गों के लोग एक साथ बैठकर आरक्षण के मामले में कुछ नया सोच सके।

16 एथेनॉल उत्पादन बढ़ने से किसानों के अच्छे दिनों की उम्मीद

मैंने कुछ दिन पहले ही इस विषय पर लिखा था कि यदि खेती-किसानी को बचाना है तो आपको एथेनॉल का उत्पादन तेजी से बढ़ा देना चाहिए। मुझे आश्चर्य है कि पिछले एक-दो महीने से ही एथेनॉल का उत्पादन बढ़ा है और अब धीरे-धीरे किसान के दिन सुधरने लगे हैं। अभी आज ही पता चला कि अब भारत में अनाज, दालें, खाद्य तेल, शक्कर सबके बाजार मूल्य बढ़े हैं। शक्कर के दाम तो और भी तेजी से बड़े हैं। स्वाभाविक है कि अब किसानों की आत्महत्याएँ कम हो जाएंगी। यदि एथेनॉल का उत्पादन और तेजी से बढ़ जाए तो संभव है कि किसान व्यापारियों से भी कुछ आगे निकल जाए क्योंकि अब तक का रिकॉर्ड है कि खेती सबसे अधिक खराब धंधा है और व्यापार सबसे अधिक अच्छा। मैंने अपने जीवन में प्रयोग करके भी दोनों अनुभव किए हैं। खेती का भी और व्यापार का भी। मैं यह साफ कर सकता हूं कि खेती और व्यापार की कोई तुलना नहीं हो सकती है। लेकिन पहली बार इस सरकार ने हिम्मत की है और किसानों के पक्ष में सोचा है। यही कारण है कि डीजल-पेट्रोल खाने वाले बड़े-बड़े लोग और उनके एजेंट अब हाय-हाय चिल्लाने लगे हैं। विपक्ष के नेता अरविंद केजरीवाल, राहुल गांधी और खड़गे भी सबके माथे पर पसीना निकल रहा है कि अब डीजल-पेट्रोल का क्या होगा। निश्चित ही ये लोग किसानों के खिलाफ कोई नया षड्यंत्र करेंगे और सड़कों पर उतरकर छाती पीटेंगे। मुझे उम्मीद है कि सरकार अपने वचन पर कायम रहेगी किसान की आत्महत्या वर्तमान भारत के लिए कलंक है। यदि देश में 10-5 पेट्रोल-डीजल खाने वाले यदि मर भी जाएं तो चिंता अरविंद केजरीवाल, राहुल और खड़गे को होगी किसानों को नहीं।

17 हिंदू संस्कृति की वर्ण और कुंभ व्यवस्था में संशोधन की आवश्यकता

हम हिंदू संस्कृति के लोग हैं। हम वर्ण व्यवस्था को भी मानते हैं और कुंभ प्रणाली को भी अच्छा मानते हैं। दुनिया की यह सबसे अच्छी प्रणाली है। इसके अनुसार हम मानते हैं कि मार्गदर्शक अर्थात ब्राह्मण, रक्षक अर्थात क्षत्रिय, पालक अर्थात वैश्य और सेवक अर्थात शूद्र, चारों का आपस में तालमेल भी होना चाहिए और चारों की अपनी-अपनी स्वतंत्रता भी होनी चाहिए। संतुलन और स्वतंत्रता को ही हम स्वतंत्रता और सहजीवन का तालमेल मानते हैं। स्पष्ट है कि एक विचारकों का ग्रुप अवश्य होना चाहिए, जिसे हम मार्गदर्शक कहते हैं। देश-काल-परिस्थिति के अनुसार नीतियां बदलनी पड़ती हैं, कभी-कभी सिद्धांतों में भी समझौते करने पड़ते हैं। नीतियां तो यह मार्गदर्शक मिलकर और राज्य के साथ संतुलन बनाकर बदल सकते हैं, किंतु सिद्धांतों में यदि कोई बदलाव लाना है, इसके लिए हमने 12 वर्ष में एक बार कुंभ की भी प्रणाली बनाई थी। कुंभ में सभी वर्णों के लोग एकत्रित होते थे और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार वहां निष्कर्ष निकालकर घर लौटते थे। इस तरह हमने व्यक्ति से समाज व्यवस्था और स्वतंत्रता से सहजीवन के तालमेल का जो ढांचा बनाया था, वह विकृत हुआ। कुंभ की भी धारणा बदली, वर्ण व्यवस्था भी रूढ़ हो गई और दुष्ट राजनीतिक प्रवृत्तियां हमारी इस समय आज की कमजोरी का लाभ उठाकर मजबूत हो रही हैं। ऐसी स्थिति में हमें नए सिरे से वर्ण व्यवस्था और कुंभ व्यवस्था का संशोधीकरण करना चाहिए। हम पुराने तरीके पर वर्ण व्यवस्था और कुंभ को दूर तक नहीं ले जा सकेंगे।

इसलिए हम लोगों ने वर्तमान वर्ण व्यवस्था और कुंभ व्यवस्था में बहुत थोड़ा सा संशोधन करते हुए उसको नया स्वरूप देने का प्रयास किया है। हम वर्ण व्यवस्था को मार्गदर्शन, रक्षक, पालक और सेवक इन चार भागों में बांट रहे हैं और कुंभ में एक मार्गदर्शक सम्मेलन भी रखने पर विचार किया जाएगा।

18 जंतर-मंतर के आरक्षण हटाओ आंदोलन का असली उद्देश्य क्या है?

जंतर मंतर पर एक आरक्षण हटाओ आंदोलन शुरू हुआ है। हम लोग भी इस आंदोलन पर बारीकी से नजर रख रहे हैं। हमारी दिल्ली ऑफिस के मीडिया कर्मी निरंतर जंतर मंतर जाकर स्थिति देख रहे हैं। हम लोग किसी भी प्रकार के आरक्षण के विरोधी हैं। लेकिन जंतर मंतर आंदोलन में अभी यह बात साफ नहीं हुई है कि यह आंदोलन आरक्षण के विरुद्ध है अथवा अंबेडकरवादियों के विरुद्ध है अथवा सरकार के विरुद्ध है, क्योंकि जब तक यह बातें साफ नहीं हो जातीं, तब तक हम अपना स्टैंड भी क्लियर नहीं कर सकते। यदि यह आंदोलन किसी भी प्रकार के आरक्षण के विरुद्ध है तो हम इस आंदोलन में साथ दे सकते हैं, लेकिन यदि यह आंदोलन सिर्फ अंबेडकरवादियों के विरुद्ध सवर्ण का है तो हम इस आंदोलन से दूरी बनाकर रखेंगे, क्योंकि हमारी दृष्टि में यह आंदोलन सिर्फ लूटमार में बंटवारे का आंदोलन है और कुछ नहीं। यदि यह आंदोलन सरकार के खिलाफ है तो हम चाहेंगे कि सरकार आंदोलनकारी को मार-मार कर वहां से भगा दे। हम इस आंदोलन के खिलाफ हैं। अब तक हमारी टीम की रिपोर्ट के अनुसार यह आंदोलन सरकार के खिलाफ ज्यादा दिखता है, क्योंकि जब हम यह प्रस्ताव दे रहे हैं कि आरक्षण खत्म करने के लिए सरकारी कर्मचारी और राजनेताओं के वेतन-भत्ते कम कर दिए जाएं, उनके अधिकार कम कर दिए जाएं, उनकी सुविधा कम कर दी जाए तो हमारे आरक्षण विरोधी हमारे आंदोलन के साथ नहीं खड़े हैं। आप बताइए कि यदि यह मेरी बात मान ली जाए, आरक्षण का झगड़ा अपने आप खत्म हो जाएगा। सरकारी कर्मचारियों का वेतन, भत्ता, सुविधा, अधिकार और नेताओं का भी सब कुछ कम कर दीजिए, बस आरक्षण को रहने दीजिए।

19 मनुस्मृति पर राहुल गांधी की आपत्ति और परिवार व्यवस्था का प्रश्न

हम वर्तमान राजनीतिक और सामाजिक परिवेश को दो संस्कृतियों के बीच में टकराव के रूप में देख रहे हैं। एक संस्कृति का नेतृत्व राहुल गांधी कर रहे हैं, जिनके पीछे कम्युनिस्ट, मुसलमान और कुछ अंबेडकरवादी कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे हैं। दूसरी संस्कृति का नेतृत्व नरेंद्र मोदी, मोहन भागवत, योगी आदित्यनाथ तथा हम लोग कर रहे हैं। कल पुणे में राहुल गांधी ने अपनी संस्कृति के अनुरूप मनुस्मृति की बहुत आलोचना की। उन्होंने यह बात साफ की कि अब महिलाओं को स्वयं को महिला समझना चाहिए, वे परिवार के बंधन में रहने के लिए बाध्य नहीं हैं। हर महिला को स्वतंत्रता का अनुभव होना चाहिए, जबकि मनुस्मृति महिलाओं को परिवार की बंधक मानती है। हमारी संस्कृति यह कहती है कि महिलाओं को भी स्वयं को परिवार का सदस्य मानना चाहिए। वे मां, बेटी या बहन तक ही परिवार में रह सकती हैं। महिला के रूप में आपके परिवार छोड़ने की स्वतंत्रता है, लेकिन परिवार में रहते हुए आप अपने को महिला नहीं मान सकती। मनुस्मृति भी यह आदेश देती है कि महिलाओं की रक्षा करना भाई, पति और पिता का सर्वोच्च दायित्व होता है। मनुस्मृति के अनुसार पुरुषों की जिम्मेदारी है कि वे महिलाओं की सुरक्षा करें और महिलाओं की जिम्मेदारी है कि वह पुरुषों के साथ परिवार में सहभागी की भूमिका निभावे। हमारी दोनों संस्कृतियों के बीच में यही टकराव है कि हम परिवार और समाज व्यवस्था को व्यक्ति से ऊपर मानते हैं और हमारे विरोधी संस्कृति के लोग व्यक्ति को पारिवारिक और सामाजिक अनुशासन से मुक्त मानते हैं। मनुस्मृति पुरुषों को निर्देश देती है यत्र नार्यस्तु पूज्यंते का और महिलाओं को निर्देश देती है कि पति भगवान स्वरूप है। हम वर्ग संघर्ष नहीं, वर्ग समन्वय के पक्षधर हैं और विपक्ष वर्ग संघर्ष का पक्षधर है, समन्वय का नहीं। हम गांधी विचारों को मानने वाले हैं और विपक्ष गांधी के नाम की दुकानदारी करना जानता है। हमें मनुस्मृति के इस पारिवारिक संदेश पर गर्व है, जिसे राहुल निंदक समझ रहे हैं।

20 राहुल गांधी और भारतीय परिवार व्यवस्था

कल राहुल गांधी ने हमारी भारतीय परिवार व्यवस्था की आलोचना करके बहुत बड़ी गलती की है। हमारी एक परिवार व्यवस्था लंबे समय से चल रही है, उसमें कुछ गलतियाँ हैं, उन गलतियों का हम सुधार भी कर रहे हैं। लेकिन हम उस परिवार व्यवस्था को उचित नहीं समझते, जिस परिवार व्यवस्था का राहुल गांधी ने उदाहरण प्रस्तुत किया है। मेरा भी अपना परिवार है, मेरे परिवार में अभी सातवीं पीढ़ी है, इस तरह मैंने छह पीढ़ियाँ देखी हैं। हमारे परिवार में महिलाओं और बच्चों को अधिकतम स्वतंत्रता है और हमारे परिवार की महिलाएँ और बच्चे परिवार के अनुशासन को पूरी तरह स्वीकार करते हैं। क्योंकि हम लोग राहुल गांधी सरीखे लोगों से बहुत दूरी बनाकर रखते हैं। लेकिन एक दूसरा परिवार भी हमारे सामने उदाहरणस्वरूप है और वह है नेहरू परिवार। नेहरू परिवार से लेकर राहुल, प्रियंका और बच्चों तक 6-7 पीढ़ियाँ स्वतंत्रता के बाद गुजरी हैं। आपने वहाँ महिलाओं और बच्चों की स्वतंत्रता तो देखी है, लेकिन परिवार व्यवस्था का जितना गंदा उदाहरण नेहरू से लेकर वर्तमान तक दिखाई देता है, इस

उदाहरण को हम हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं। हमें कभी गांधी नाम की नकल करने की जरूरत नहीं पड़ी। हम सातों पीढ़ी से इस अग्रवाल नाम से जी रहे हैं। हम लोगों ने गरीबी भी देखी है, अमीरी भी देखी है, लेकिन नेहरू परिवार ने आज तक सत्ता की ब्लैकमेलिंग के अतिरिक्त अपने जीवन में कुछ नहीं देखा है। कल राहुल गांधी ने पुणे में जिस तरह का भाषण दिया, वह राहुल ने अपनी योग्यता के आधार पर नहीं, बल्कि सोनिया गांधी के गर्भ से पैदा होने के कारण दिया, अन्यथा राहुल सरीखे कितने लोग विपक्ष के नेता बनने के लिए तैयार खड़े हैं। लेकिन ये लोग राहुल सरीखे सोनिया के गर्भ से पैदा नहीं हुए हैं। इसलिए मेरा यह मानना है कि राहुल गांधी को अपने कम्युनिस्ट और अंबेडकरवादी मित्रों को खुश करने के लिए मनुस्मृति की गलत आलोचना नहीं करनी चाहिए थी। क्योंकि हम लोग अपने परिवार व्यवस्था में मनुस्मृति के अनुसार स्वतंत्रता और सहजीवन, तालमेल बनाकर रखना जानते हैं। हमें गर्व है कि हम राहुल गांधी को आदर्श परिवार समझाने की क्षमता रखते हैं। मेरा राहुल गांधी से निवेदन है कि वह परिवार व्यवस्था को तोड़ने के अपने अभियान पर फिर से विचार करें। अन्यथा अपने नाम के साथ गांधी लगाना छोड़ दें।

21 कश्मीर में घुटन की बात के पीछे छिपी राजनीतिक हकीकत

आज कश्मीर की पूर्व मुख्यमंत्री और बड़ी मुस्लिम नेता मुफ्ती स ईद ने यह विचार व्यक्त किया है कि अब तो कश्मीर में हम लोगों को घुटन महसूस हो रही है। प्रमुख लोगों को जेल में डाला जा रहा है उन्हें दंडित किया जा रहा है। महबूबा मुफ्ती ने जो बात कही है वह बात उनकी अकेले की नहीं है ऐसा देश में समझने वाले ही और भी कई लोग हैं जो लगभग सभी मुसलमान है और वह सभी भारत में घुटन महसूस कर रहे हैं। महबूबा ने यह बात खुलकर कही है और कुछ लोग दबी जुबान से कहते हैं तो मेरे विचार से यह जो कुछ भी हो रहा है वह तो होना ही था क्योंकि महबूबा मुफ्ती तथा कुछ अन्य लोग पूरी तरह आश्वस्त थे कि कश्मीर पाकिस्तान में चला जाएगा धीरे-धीरे असम भी ले लेंगे लेकिन उनके सपने असफल हो गए। उन्होंने यह भी सोचा था की धारा 370 हटते ही कश्मीर में विद्रोह हो जाएगा नेहरू परिवार भी साथ देगा लेकिन सारी कोशिश धरी की धरी रह गई जो पत्थर चल रहे थे वह भी बंद हो गए। कश्मीर के मुसलमान बिल्कुल शांत हो गए। सबसे बड़ी दिक्कत यह आई कि जिस पाकिस्तान पर मुफ्ती सईद को घमंड था वह पाकिस्तान ही अपने झगड़े में फंस गया। मुफ्ती को सबसे ज्यादा कष्ट उमर अब्दुल्ला से है क्योंकि उमर अब्दुल्ला पाकिस्तान के पक्ष में नहीं बोल रहे हैं इस तरह अगर मुफ्ती को कष्ट हो रहा है तो हम लोगों को ऐसा समझ में आ रहा है कि देश ठीक दिशा में जा रहा है अब मुफ्ती सईद ना पाकिस्तान के आस्वस्थ हैं और भारत में तो उनको घुटन हो ही रही है। मेरी मुफ्ती तथा भारत के ऐसे घुटन महसूस कर रहे मुसलमान को सलाह है कि वह अब समान नागरिक संहिता को स्वीकार कर ले उनकी घुटन भी खत्म हो जाएगी और उन्हें शांति भी मिल जाएगी।

22 मां संस्थान नई राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था की पहल

हम माँ संस्थान के माध्यम से एक नई राजनीतिक आर्थिक धार्मिक संवैधानिक व्यवस्था का प्रारूप समाज के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। इस प्रारूप में हमारा सबसे महत्वपूर्ण विषय है लोक स्वराज। लोक स्वराज गांधी का प्रिय विषय रहा है यही कारण है कि माँ संस्थान को अधिकांश गांधीवादियों और आचार्य कुल वालों का पूरा-पूरा समर्थन मिल रहा है। दूसरी तरफ हम नरम हिंदुत्व के पक्षधर हैं। इस नरम हिंदुत्व के पक्षधर होने के कारण हमें आर्य समाज गायत्री परिवार तथा संघ परिवार के सब लोगों का समर्थन मिल रहा है। हमें नरेंद्र मोदी मोहन भागवत योगी आदित्यनाथ आदि का भी पूरा समर्थन मिल रहा है। हमारा तीसरा पक्ष है कि एक स्वतंत्र विचार मंथन ग्रुप बनना चाहिए जैसा पुराने जमाने में ब्राह्मणों की भूमिका हुआ करती थी वह विचार मंथन के द्वारा ही निष्कर्ष निकालते थे अन्य कोई आधार नहीं था। इस तीसरे ग्रुप को भी हमें सब प्रकार के स्वतंत्र विचारकों का समर्थन मिल रहा है। इस तरह माँ संस्थान लगातार पूरे देश में एक नए तरह की उम्मीद जगा रहा है। अभी अयोध्या में इसका उत्तर प्रदेश का सम्मेलन हुआ था बहुत अच्छे परिणाम आए अब अगला सम्मेलन सितंबर की 26 27 तारीख को राँची में आयोजित है जिसमें बंगाल उड़ीसा झारखंड और बिहार के लोगों की एक बड़ी बैठक होगी और इन तीन मुद्दों पर उस बैठक में आगे की योजना बनेगी। मैं तो उस बैठक में नहीं रह पाऊँगा लेकिन मेरा पूरा आशीर्वाद रहेगा। हम लोक स्वराज और नरम हिंदुत्व के प्रति पूरी तरह समर्पित हैं।

शक्ति का स्वभाव

ज्ञानेन्द्र आर्य

संगठन में ही शक्ति निहित है। यह वह मूल सत्य है जिसे समझे बिना न सुरक्षा को समझा जा सकता है, न सत्ता के दुरुपयोग को। जब भी दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी साझे उद्देश्य के लिए एकत्र होते हैं — चाहे वह परिवार हो, गांव हो, या राष्ट्र — वहां संगठन जन्म लेता है, और संगठन के साथ ही शक्ति भी उत्पन्न होती है। शक्ति का

यह जन्म आकस्मिक नहीं, संरचनात्मक है।

शक्ति का स्वभाव: दमन और वर्चस्व

शक्ति के मूल में दमन और वर्चस्व के तत्व होते हैं। यह कोई दोष नहीं, स्वभाव है। सुरक्षा शब्द की आवश्यकता ही तब पड़ती है जब उद्दंडता, उच्छृंखलता, दुष्टता और अत्याचार का अस्तित्व हो। यदि दुनिया में इन शब्दों का कोई अर्थ ही न होता, तो रक्षा और सुरक्षा जैसे शब्द भी निरर्थक हो जाते। जो लोग शांतिपूर्ण सृजन में जीना चाहते हैं, वे भी अपनी उस चाह की रक्षा के लिए संगठन बनाने को विवश होते हैं — परिवार, गांव, राज्य, ये सब सुरक्षा की उसी आवश्यकता से जन्मी संरचनाएं हैं।

यहीं वह गहरा दार्शनिक प्रसंग प्रासंगिक हो जाता है जो सनातन परंपरा में सदियों से कहा गया है — सृष्टि की सबसे सुंदर, सौम्य कृति शिवप्रिया माता पार्वती, जब दुष्टों के दमन की आवश्यकता आती है, तो काली का रूप धारण करती हैं। काली का स्वरूप काला, उग्र, मुण्डमालाधारी, रक्तपिपासु और नग्न खड्गधारी है। यह रूपांतरण आकस्मिक नहीं — यह बताता है कि जब शक्ति दुष्टों के दमन के लिए क्रियाशील होती है, तब उसका स्वभाव भी उतना ही उग्र होना अनिवार्य है। सौम्यता से दुष्टता का दमन संभव नहीं।

सृजन का स्वभाव: शांत और सहज

इसके विपरीत सृजन का स्वभाव सदा शांत, आनंदमय, निर्भय, सहज और सरल होता है। सृजन को किसी दमन की आवश्यकता नहीं — वह स्वतः, बिना किसी बाहरी दबाव के, प्रकट होता है। यही कारण है कि सृजनशील शक्तियां आसानी से संगठित नहीं होतीं और उनमें साझा सहमति बनना कठिन होता है — उनका स्वभाव ही केंद्रीकरण-विरोधी है, बहुवचनी है। जबकि नकारात्मक शक्तियां सरलता से संगठित हो जाती हैं, क्योंकि दमन और वर्चस्व की प्रकृति ही एकाग्र और केंद्राभिमुख होती है।

शक्ति की सीमा: केवल सुरक्षा तक

यहीं से एक महत्वपूर्ण सिद्धांत निकलता है — संगठन को केवल सुरक्षा का कार्य सौंपा जाना चाहिए। शेष कार्य — विशेषकर लोक कल्याण — केंद्रित शक्ति से नहीं, बल्कि विकेंद्रित ढंग से संचालित होने चाहिए, जहां नियमन तो हो पर वह किसी एक केंद्र में जमा न हो, बल्कि छोटी-छोटी इकाइयों (जैसे ग्राम सभा) में बंटा रहे। सरकारों में जो भ्रष्टाचार और अनाचार दिखाई देता है, उसका मूल कारण यही है कि उन्हें सुरक्षा के साथ-साथ कल्याणकारी कार्य भी सौंप दिए गए — और जहां भी शक्ति केंद्रित होती है, वहां दमन और वर्चस्व अपने आप सिर उठाने लगते हैं, भले ही उद्देश्य कल्याण का ही क्यों न हो। शिव यानी कल्याण को काली के सृजनकारी उपयोग के लिए शव सामान होना पड़ा था।

शक्ति आवश्यक है — पर केवल वहीं जहां दुष्टता का दमन अपेक्षित है। शेष हर स्थान पर सृजन को उसकी सहज, निर्भय स्वतंत्रता में ही फलने-फूलने देना चाहिए।

जीवन पथ

अब आगे...

मूलतः यह सामाजिक समस्या है और इसका सामाजिक ढंग से ही उन्मूलन होना चाहिए। भारत में समाज के हेय वर्गो को आर्थिक अवसर उपलब्ध कराने हेतु राज्यगत व्यवस्था में दिया गया आरक्षण इसी दृष्टिकोण से गलत सिद्ध होता है। इस समस्या के सन्दर्भ में व्यवस्था का यह दायित्व बनता है कि वह न केवल हेयता पर वर्गभेदीय श्रेष्ठता सिद्ध करने वाले व्यक्तियों को समुचित दण्ड दे बल्कि साथ में व्यवस्था के ढाँचे से ऐसे तमाम उपबन्धों का लोप करे जो विभिन्न व्यक्तियों को सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर एक दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने के अवसर प्रदान करते हैं। सामाजिक हेयता का उन्मूलन केवल आर्थिक अवसर की सुलभता से नहीं हो सकता है इससे तो केवल वर्गभेद विकसित होता है। ....इसी प्रकार जो व्यक्ति आर्थिक समस्या से ग्रस्त है उसकी समस्या का उन्मूलन सामाजिक श्रेष्ठता से करना न्याय संगत नहीं है। राज्य ऐसे विषयान्तरात्मक समाधान सत्ता की कठोरता के विरोध स्वरूप जनता के मन में पैदा हुए आक्रोश को दबाने के लिए करता है। वह जनता को राजनीति की प्रलोभन भरी भाषा में फंसाता है और न्याय के समुचित दर्शन को, उसकी प्रकृति के विरूद्ध विभिन्न प्रकार से विभाजित करके अन्याय करता है। राज्य द्वारा प्रतिपादित न्याय की यह परिभाषा समाज में वर्ग संघर्ष को विकसित करती है। .....विवेक कुछ क्षणों के लिए चुप होता है और पुनः बोलता है- समुचित व्यवस्था कभी भी यथार्थ की कसौटी से विरक्त होकर स्थापित नहीं की जा सकती है। राज्य, व्यवस्था की खांमियों में सत्ता की सुदृढता के सूत्र खोजता है। माना कि लोग पथ-भ्रष्ट हुए हैं लेकिन पथ-भ्रष्टों की धृष्टता को जो व्यवस्था दण्डित न कर सके, उन्हें उनके मौलिक स्तर के अनुरूप व्यवस्थित न रख सके, क्या ऐसी व्यवस्था को उचित कहा जा सकता है? ....इतना कहकर विवेक अपना

स्पष्टीकरण पूरा करता है। खां एक बार उसे और फिर प्रोफेसर को देखते हैं, वह कुछ सोचकर प्रोफेसर से कहते है- मैं विवेक की बात से सहमत हूँ लेकिन मैं अपने अन्तःकरण में भारत के संविधान के प्रति अविश्वास को स्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ। मैने जितना इसे समझा है, इसका अध्ययन किया है उसके अनुसार, इसमें कुछ परिवर्तन करने से हम व्यवस्था को सुचारू कर सकते हैं। मेरे ख्याल में इसे परिवर्तित करने की आवश्यकता नहीं है।

हमारे मन में स्थापित व्यवस्था के प्रति विश्वास है, इसका अर्थ है कि हम व्यवस्था के प्रति निष्ठावान हैं। लेकिन हम व्यवस्था में यथार्थ के अनुरूप कुछ अथवा समुचित परिवर्तन की कल्पना करते हैं तो यह हमारा जीवन जीने का मूल अधिकार सिद्ध होता है। किसी भी समाजशास्त्री का यह कार्य होता है कि वह समाज के सामने यथार्थ का विश्लेषण प्रस्तुत करे। अभिव्यक्ति, व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है। लेकिन समाज, व्यक्ति की अभिव्यक्ति को अपने नियम के रूप में स्वीकार करे या न करे यह समाज का कार्य है। उसका कहा निश्चित रूप से हो जाए, यह किसी समाजशास्त्री का अधिकार नहीं हो सकता है।

अर्थात आपका या विवेक का विमर्श सिद्धान्त बनकर समाज में स्थापित हो, इसे भी आप आवश्यक नहीं समझते हैं अंकल! इस बार सिमी, प्रोफेसर से प्रश्न करती है।